शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 6 अंक : 11 1 जून 2014

(ज्येष्ठ-आषाढ, विक्रम संवत् 2071)

संरक्षक

मुकुन्द कुलकर्णी

प्रो.के.नरहरि

❖

परामर्श

डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल

प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक

प्रो. सन्तोष पाण्डेय

❖

सम्पादक मण्डल

विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी

भरत शर्मा

❖

प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक

बजरंग प्रसाद मजेजी

❖

प्रेषण प्रभारी

बसन्त जिन्दल 9414716585

प्रकाशकीय कार्यालयः

82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,

जयपुर (राज.) 302001

दूरभाषः 9414040403,9782873467

दिल्ली ब्यूरो

शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,

कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053

दूरभाषः 011-22914799

E-mail:

shaikshikmanthan@gmail.com

Visit us at :

www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 15/-

वार्षिक शुल्क 150/-

आजीवन (दस वर्ष) 1200/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पर्यावरण चेतना का पाठ्यक्रम–हनुमान सिंह राठौड़

शरीर पंच तत्व से बना है- बाह्य प्रकृति के पंच तत्त्व सम्यक रहेंगे तो पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय अनुकूल रहेंगे- संवेदनशील रहेंगे, ये प्रतिकूल हुए तो वेदना उत्पन्न करेंगे, यही दुःख का मूल है। अतः यह मंत्र सुखी होने का मंत्र है। हमारे प्रातः काल को ये सब मंगलमय करें- ऐसी आप सब की इच्छा है तो अपने-अपने हिस्से के प्रयत्न का संकल्प करो।

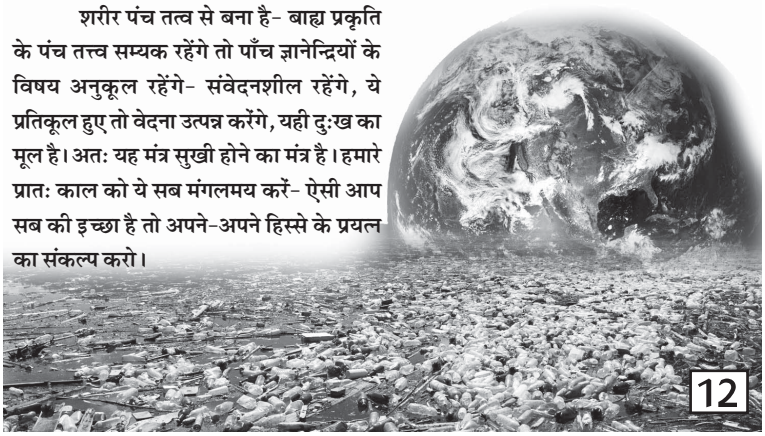

अनुक्रम

4.	पर्यावरण संरक्षण : चेतना, संस्कार व शिक्षा	- सन्तोष पाण्डेय
7.	पर्यावरण चेतना की एकात्म दृष्टि	- डॉ. बजरंग लाल गुप्ता
16.	प्रकृति, पंचतत्त्व और मानव	- डॉ. मधुर मोहन रंगा
19.	भारतीय पर्यावरण : दृष्टि और व्यवहार	- बजरंग प्रसाद मजेजी
21.	Development and Environmentalism :	- Dr. Manoj Sinha
27.	जलवायु परिवर्तन: क्या बुरे दिन आने वाले हैं ?	- विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी
30.	पर्यावरण और भारतीय दृष्टि	- बजरंगी सिंह
32.	पर्यावरण की शिक्षा अर्थात शिक्षा का पर्यावरण	- डॉ. चन्द्रशेखर कच्छावा
34.	विशिष्ट गुणों वाली शिक्षा की आवश्यकता	- रणजीत सिंह
36.	स्कूली शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की जरूरत	- पंकज चतुर्वेदी
38.	कौशल के हथियार से भारत बनेगा सिरमौर	- जयंतीलाल भंडारी
40.	'Singapore, Korea new education...	- Ayesha Banerjee
42.	गतिविधि	

Environmental Problems and Our Responsibilities

❑ **Dr. A. K. Gupta**

Consumer based economy has focused on use and throw concept rather than go for repair or recycle and decrease amount spent on consumer goods. We believe in three phases i.e. creation, nourishment and destruction i.e. represented by Brahma, Vishnu & Mahesh. Considering these three phases one can think of present day scenario. Creation of consumer goods is desired for better economy without much concern about second and third phase. Nourishment stands for sustainable uses enhancing its usable life. One should focus on durability of goods so that overall life cost reduces thus it goes in favour of overall low cost.

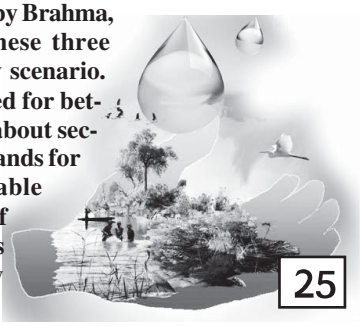

पर्यावरण संरक्षण : चेतना, संस्कार व शिक्षा

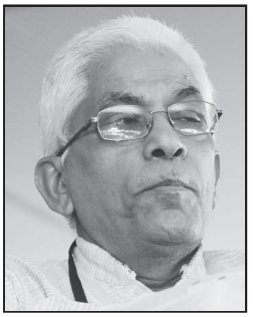

भारत में मानव व प्रकृति का संबंध सामाजिक व्यवहार, तीज-त्योहार, गीत-संगीत, धार्मिक व सामाजिक आख्यानों उत्सवों, मेलों (यथा कुंभ व महाकुंभ मेला) के माध्यम से प्रकट होता है। भारत में जन्म से मृत्यु तक संपूर्ण जीवन में इसी पर्यावरणीय चेतना का भाव जगाये जाने की परंपरा व संस्कार है। ये सभी पर्यावरण संरक्षण के उपाय ही हैं। पर्यावरण संरक्षण में स्वच्छता व निर्मलता का बड़ा योगदान है। देश में प्रत्येक भारतीय व्यक्तिगत आचरण व सामाजिक व्यवहार में इनके प्रति सदैव सचेष्ट रहते हैं। वे आन्तरिक व बाह्य प्रदूषण का परिहरण भारतीय संस्कृति द्वारा प्रदत्त संस्कारों से करते हैं। इससे पर्यावरणीय सन्तुलन बना रहता है।

❑ **सन्तोष पाण्डेय**

संपादकीय

पर्यावरण जीव मात्र के अस्तित्व का आधार है। संपूर्ण सृष्टि में पृथ्वी ही एक स्थान है, जहाँ जीवन विद्यमान है। अब तक उपलब्ध जानकारी के अनुसार किसी भी अन्य ग्रह या उपग्रह पर जीवन पाये जाने के संकेत नहीं हैं। पृथ्वी पर भी जीवन अनुकूल पर्यावरण के कारण ही संभव हो सका है। इस पर्यावरण अनुकूलता को बनाये रखना समस्त मानव जाति का पुनीत कर्तव्य है। मनुष्य के निरन्तर बढ़ते ज्ञान व विज्ञान ने जहाँ एक ओर मानव जीवन, को सुगम और सरल बनाया है, वहीं अनेकों ऐसे पदार्थों व कार्यों को भी प्रेरित किया है, जिनसे यह प्राकृतिक सन्तुलन प्रभावित हो रहा है। इससे पृथ्वी का पर्यावरण प्रभावित हो रहा है। पर्यावरण असन्तुलन या क्षति के कारण मौसम तंत्र परिवर्तित हो रहा है जिससे जीव मात्र का अस्तित्व ही खतरे में पड़ रहा है। यह खतरा इतना विकराल रूप ले चुका है कि इसका उपचार किसी एक देश विशेष के वश में नहीं है। इस खतरे के निराकरण के लिये संपूर्ण विश्व समुदाय को सामूहिक प्रयास करने आवश्यक हैं। आज विश्व के समक्ष प्रस्तुत गंभीरतम चुनौती पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित कर इसके संरक्षण को सुदृढ करने की है। समस्त मानव जाति को इसके प्रति जागरुक बनाने व पर्यावरण संरक्षण को जीवन का अभिन्न अंग बनाने के सामाजिक एवं व्यक्तिगत चेतना की परम आवश्यकता है। पर्यावरण चेतना को जागरुक बनाने में समाज की विश्व दृष्टि, संस्कृति, संस्कार व शिक्षा अतुलनीय योग देते हैं। यही वे माध्यम में जिनके द्वारा मनुष्य व समाज को व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से पर्यावरण असंतुलन का परिहरण कर पर्यावरण संरक्षण के संस्कार डाले जा सकते हैं।

आज भी विश्व में दो प्रकार की विश्व दृष्टि विद्यमान हैं। एक ओर अध्यात्म से परिपूर्ण पूर्व के देशों की दृष्टि है, जिसमें प्रकृति के साथ मानव के सह अस्तित्व की धारणा है, जिसमें प्रकृति से उतना ही लेने की प्रवृत्ति है जितना कि प्रकृति बिना किसी क्षति या असंतुलन के दे सकती है। दूसरी ओर पश्चिमी देशों की जीवन दृष्टि है जिसमें प्रकृति को मानवीय जीवन के लिये ही काम आने की संकल्पना है। मानव जीवन को अत्यन्त आनन्दमय बनाने के लिये प्रकृति के असीमित दोहन की प्रवृत्ति है। मनुष्य द्वारा प्रकृति को देने की कोई चाह नहीं है। विज्ञान की उन्नति ने इस प्रवृति को बढ़ावा दिया है। प्रकृति के अनेक रहस्यों से परदा हटाकर मानव के उपभोग के लिये उनका उपभोग एक मात्र लक्ष्य रहा है। इससे प्रकृति के सीमा से अधिक दोहन किया है। शनैः शनैः इस प्रवृत्ति का व्याप्त संपूर्ण

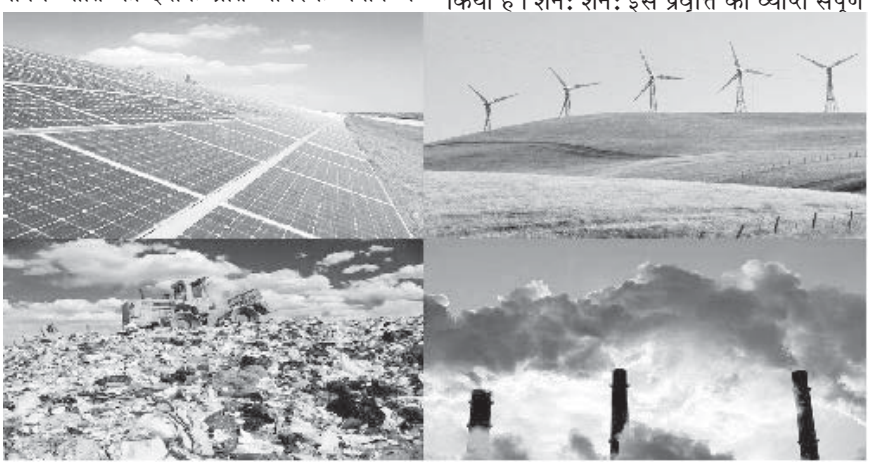

विश्व में होने से आज मनुष्य पर्यावरण विनाश के कगार पर खड़ा है। आज वैश्विक उष्मायन, ओजोन परत में छिद्र, अम्लीय वर्षा, वनों की समाप्ति, सामूहिक प्रदूषण के कारण प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ रहा है। संपूर्ण विश्व जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण व मिट्टी के प्रदूषण से जूझ रहा है।

भारतीय जीवन दर्शन पूर्वी देशों की विश्व-दृष्टि का प्रतिबिम्ब है। भारतीय जीवन दर्शन प्रकृति के साथ सहयोग, सह अस्तित्व व पारस्परिक लेन-देन पर आधारित है। प्रकृति का स्वभाव सृजन, पोषण व नष्ट होना पर आधारित है। इससे पुनःचक्रण (recycelling), पुनर्भरण व संरक्षा की धारणा का पोषण होना है। भारतीय जीवन पद्धति में ये गहन रूप से रचे-बसे हैं। पेड़-पौधों, वनस्पति, ऋतु, वर्षा, वायु, रोशनी, विभिन्न मौसम व अन्य को सामाजिक व व्यक्तिगत जीवन में धार्मिक स्वरूप प्रदान करते हुये इन्हें देवताओं का स्वरूप प्रदान किया गया है। भारत में मानव व प्रकृति का संबंध सामाजिक व्यवहार, तीज-त्योहार, गीत-संगीत, धार्मिक व सामाजिक आख्यानों उत्सवों, मेलों (यथा कुंभ व महाकुंभ मेला) के माध्यम से प्रकट होता है। भारत में जन्म से मृत्यु तक संपूर्ण जीवन में इसी पर्यावरणीय चेतना का भाव जगाये जाने की परंपरा व संस्कार है। ये सभी पर्यावरण संरक्षण के उपाय ही हैं। पर्यावरण संरक्षण में स्वच्छता व निर्मलता का बड़ा योगदान है। देश में प्रत्येक भारतीय व्यक्तिगत आचरण व सामाजिक व्यवहार में इनके प्रति सदैव सचेष्ट रहते हैं। वे आन्तरिक व बाह्य प्रदूषण का परिहरण भारतीय संस्कृति द्वारा प्रदत्त संस्कारों से करते हैं। इससे पर्यावरणीय सन्तुलन बना रहता है। इसके विपरीत पश्चिमी देशों की जीवन दृष्टि प्रकृति पर नियंत्रण कर मनुष्य के जीवन को सुगम, सरल आनन्दमय व निष्कंटक बनाने की रही है।

पश्चिमी दर्शन प्रकृति को मनुष्य की दासी व भोग्या मानता है। प्राकृतिक आपदाओं, विपत्तियों या कठिनाइयों व प्राकृतिक बाधाओं पर तकनीक व विज्ञान के माध्यम से विजय प्राप्त कर मानव के अनुकूल बनाना लक्ष्य रहता है। इनसे जीवन सन्तोषजनक तो बना परन्तु प्राकृतिक संतुलन प्रभावित हुआ, जो बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण के रूप में सामने आया। इससे प्रकृति से निरन्तर लेते रहने की प्रवृति बढ़ी। पुनःचक्रण पर ध्यान नहीं रखा गया। कम भोगवाद को इतना बढ़ावा मिला कि सोशल वेस्टेज होने लगा। इससे प्राकृतिक संसाधनों की अपूरणीय क्षति हुई। सामूहिक विजय के उपरांत पश्चिमी जीवन दर्शन, जीवन पद्धति, जीवन दृष्टि, ज्ञान-विज्ञान का व्यापक प्रसार पूर्वी देशों में बढ़ने से समस्या गहराई। प्रकृति के साथ सामंजस्य व सहअस्तित्व के स्थान पर इसे मानव समाज की दासी मानने से अत्यधिक उत्पादन व अत्यधिक उपभोग को ही आर्थिक विकास मानने की धारणा पुष्ट हुई। अत्यधिक उत्पादन व अत्यधिक उपयोग के लिये जो तकनीक अपनायी गई, जिन्हें वैज्ञानिक प्रगति का नाम दिया गया, उनसे प्रकृति का अत्यधिक दोहन जो प्राकृतिक संसाधनों के शोषण की सीमा तक जाता है, हुआ। इससे पर्यावरण को अपूरणीय क्षति पहुँची है। अत्यधिक उत्पादन व अत्यधिक उपयोग के दृष्टिकोण ने दोषपूर्ण जीवन शैली व उपभोग शैली को प्रेरित किया है। इस जीवन शैली व उपभोग शैली में ऊर्जा का आवश्यकता से अधिक उपयोग हुआ है। स्वच्छता, सौन्दर्य प्रसाधनों में रंगरोगन व रसायनों के बढ़ते

उपयोग ने प्रदूषण को तीव्रता से विस्तार किया है। अत्यधिक उर्जा आधारित उत्पादन व परिवहन व्यवस्था, नित नये रूप बदलते फैशन, विज्ञापन व पब्लिसिटी व आकर्षक पैकेजिंग भी प्रदूषण में योग दे रहे हैं। इस पश्चिमी जीवन दर्शन का विस्तार के वैश्विक स्वरूप ने पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को इतना विकराल बना दिया है कि स्वयं मानव जाति के अस्तित्व को खतरा हो गया है। पश्चिमी जीवन दर्शन से ग्रस्त अनेक मनीषियों ने भारत के जीवन दर्शन से प्रेरणा ली है व पर्यावरणीय क्षति से विश्व को आगाह करने का बीड़ा उठाया है। वैज्ञानिक शोध व अनुसंधान से प्राकृतिक असन्तुलन की चिन्ताजनक सीमा से विश्व को चैतन्य किया है। मानव समाज के चैतन्य होने से सभी देशों ने पर्यावरण प्रदूषण की गहनता को पहचाना है। प्राकृतिक सन्तुलन को बनाये रखने तथा प्राकृतिक विनाश के प्रभाव को नष्ट करने वाले उपाय अपनाकर प्राकृतिक संतुलन की पुनः स्थापना के प्रयासों के लिये विश्व सजग व चैतन्य हुआ है। व इसके लिये वैश्विक स्तर पर सामूहिक प्रयास किये जा रहे हैं। अनेक वैश्विक सम्मेलनों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण के लिये चेतना जाग्रत की जा रही है, योजनायें बनायी जा रही है संस्थानों व संगठनों की स्थापना हो रही है, अन्तर्राष्ट्रीय प्रोटोकोल बनाये जा रहे हैं, अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय नियम व कानून बनाये जा रहे हैं। मानवता के भविष्य रक्षण के लिये सभी संभव उपाय अपनाने के प्रयास हो रहे हैं। इन प्रयासों के प्रसार व प्रचार तथा जीवन व्यवहार में अपनाये जाने में शिक्षा भारी योग दे रही है। इससे पर्यावरण संरक्षण के प्रति चेतना व जागरुकता वैश्विक स्तर पर बनी है।

इस वैश्विक परिदृश्य में भारत की स्थिति कुछ सुखद नहीं है? देश में पश्चिमी जीवन दर्शन, शिक्षा-दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, उत्पादन व उपभोग के तरीकों के फैलाव से प्राचीन भारतीय जीवन दृष्टि, संस्कृति व संस्कारों को क्षति पहुँची है। अत्यधिक उत्पादन व अत्यधिक उपभोग को ही विकास मानने की गलत धारणा ने पर्यावरण को क्षति पहुँचाने वाली तकनीक व उत्पाद को बढावा दिया है। विदेशी शासन काल की दीर्घ अवधि में आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक शोषण के कारण गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास आदि का विस्तार हुआ है। इनसे प्रकृति के सामंजस्य व सहअस्तित्व की प्रवृत्ति कमजोर हुई व पर्यावरण को क्षति पहुँचाने वाली प्रवृत्तियों को जन्म दिया। शौचालयों का लगभग नहीं होना, व्यक्तिगत स्वच्छता व निर्मलता के प्रति उपेक्षा आदि के कारण पर्यावरण चक्र को हानि पहुँची है। इससे पर्यावरण संरक्षण के संस्कारों का क्षय हुआ है। 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध के अन्तिम दशक में वैश्वीकरण व उदार आर्थिक नीतियों को अपनाने, अत्यधिक उत्पादन व अत्यधिक उपभोग की प्रवृत्ति को बढ़ाया है। उत्पादन की पुरानी तकनीक में ऊर्जा की अत्यधिक खपत होने लगी है। व्यक्तिगत गतिशीलता में वृद्धि से परिवहन के व्यक्तिगत साधनों की वृद्धि, शहरीकरण की निरन्तर तीव्र होती प्रगति, उर्द्धाधर भवनों से बनता कंक्रीट का जंगल पैट्रो-रसायनों के बढ़ते उपभोग, गैर बायोडीग्रेडेविल पदार्थों के बढ़ते चलन, खतरनाक रसायनों के उपयोग वाले के अनवरत ह्रास, जल स्त्रोतों को अत्यधिक दोहन, भूजल के गिरते स्तर, जैसे अन्यान्य कारणों से पर्यावरणीय क्षय की गति तेजी से बढ़ी है, परन्तु पर्यावरण से तादात्म की जो जीवनशैली थी, उसके शनैः शनैः समाप्त होने पर्यावरण को ही क्षति नहीं पहुँची वरन पर्यावरण से सामंजस्य के प्रति चेतना, जागरुकता व संस्कारों में कमी आयी है। देश में आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने की देश को जो धन संकट हुई है, उससे पर्यावरण बनाम विकास की बहस तीव्र हुई है।

गंगा सहित भारत लगभग सभी नदियों का प्रदूषण इस बहस का प्रमाण है। परन्तु क्या समस्या इन दोनों में से एक को चुनने की है अथवा भारतीय जीवन दृष्टि के अनुकूल संरक्षण के साथ विकास को अपनाना है? आवश्यकता इस बात की है कि प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग इस प्रकार किया जाय जो सस्टेनेबिल उत्पादन व सस्टेनेबिल उपभोग के लक्ष्य को प्राप्त कर सके, प्राकृतिक पुनः चक्रण को प्रेरित कर सके व गैर-बायोडिग्रेडेबिल पदार्थों के उपभोग का परिहरण कर सके। इस लक्ष्य की प्राप्ति व्यापक जन-जागरण द्वारा व्यक्ति व समाज को इनके प्रति चैतन्य करना होगा। पर्यावरण संरक्षण सबसे प्रभावी उपाय पारिवारिक जीवन से लेकर सामाजिक जीवन तक की आचरण शैली में संस्कार क्षम व्यवहार को आवश्यक अंग बनाना होगा। पर्यावरणीय चेतना व जागरूकता का सबसे सक्षम साधन शिक्षा का प्रसार व प्रचार, गरीबी उन्मूलन है। परिवार व प्राथमिक शिक्षा व्यक्ति में संस्कार डाल सकते हैं, कि वे व्यक्तिगत स्वच्छता व सार्वजनिक स्थलों की स्वच्छता को बनाये रखें। पर्यावरण को समग्र रूप में समझने व उसके अनुरूप आचरण व समझ विकसित करने में माध्यमिक व उच्च शिक्षा भारी योग दे सकती है। पाठ्यक्रमों में पर्यावरण संबंधी समझ सभी विषयों में समाविष्ट हो सकती है। पर्यावरण संरक्षण के प्रति चेतना बढ़ाने व इनके अनुरूप आचरण को प्रभावित करने में सरकार का बड़ा योगदान हो सकता है। समय की पुकार है कि समाज व सरकार इस समस्या को समग्र रूप में समझे तथा शिक्षा के माध्यम से पर्यावरणीय क्षति को न्यूनतम करते हुये प्रकृति के साथ सामंजस्य पूर्ण विकास को आगे बढ़ाये। ❑

पर्यावरण चेतना की एकात्म दृष्टि

❑ डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

पर्यावरण की समस्या का स्थायी समाधान तो हिन्दू दृष्टि अपनाने में ही है। हिन्दू दृष्टि प्रेम के दायरे के विस्तार की दृष्टि है। हमारा नियंत्रण बाहर से नहीं; आंतरिक-नैतिक नियंत्रण के आग्रह का है। प्रकृति का संरक्षण हमारा स्वभाव बने और हम इसके साथ तादात्मय स्थापित करना सीखें। पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं के प्रति 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के भाव का विस्तार करें। हम पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले कार्यों से बचें और पर्यावरण का संरक्षण करने वाले कार्यों एवं व्यवहारों को अपनायें।

आज सम्पूर्ण संसार में नष्ट होते पर्यावरण और बढ़ते प्रदूषण को लेकर सर्वाधिक चिन्ता है। और इसीलिए विभिन्न स्तरों पर इसके निदान और समाधान को लेकर विचार भी होने लगा है। यदि इस विचार-यात्रा में विश्व के विचारक-मनीषी हिन्दू दृष्टि, हिन्दू दर्शन, हिन्दू जीवन शैली और हिन्दू व्यवहार शैली को भी अपने विवेचन-विश्लेषण में सम्मिलित कर लें तो यह अत्यन्त उपयोगी होगा। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और हिन्दू चिन्तन दोनों के संयुक्त प्रयास से ही वर्तमान विश्व के सामने उपस्थित पर्यावरण-ह्रास के संकट को समग्रता से समझने और समाधान के योग्य उपाय खोजने में मदद मिल सकती है।

भारतीय मनीषियों ने पर्यावरण के दो रूप माने हैं; बाह्य पर्यावरण और आन्तरिक पर्यावरण। बाह्य पर्यावरण से तात्पर्य भूमि, जल, वायु, जीव-जन्तु और वनस्पतियों से सम्बन्धित पर्यावरण से है जबकि आन्तरिक पर्यावरण का सम्बन्ध आत्मा के पर्यावरण से है। ये दोनों प्रकार के पर्यावरण परमात्मा के ही बनाये हुए हैं और इसलिए दोनों में एकलयता ही पाई जाती है। हिन्दू मनीषियों ने इस एकलयता को ठीक प्रकार से समझने और इसे बनाये रखने पर जोर दिया है।

पर्यावरण के नष्ट होने अथवा पर्यावरण में असन्तुलन उत्पन्न होने को ही आज की भाषा में प्रदूषण (Pollution) कहते हैं। प्रदूषण के लिए हिन्दू मनीषियों ने विकृति और विषम स्थिति इन दो शब्दों का प्रयोग किया है। प्रदूषण के भी दो रूप हैं; बाहरी प्रदूषण और आन्तरिक प्रदूषण, मिट्टी, जल, वायु, पेड़-पौधों और जीव- जन्तुओं में जीवन को नुकसान पहुँचाने वाले भौतिक, रासायनिक और जैविकीय तत्त्वों की आवश्यकता से अधिक उपस्थिति होने पर बाह्य प्रदूषण की स्थिति पैदा होती है। दूसरी ओर हमारे मनीषियों ने आन्तरिक प्रदूषण को 'मानसिक और बौद्धिक कुत्साओं' के रूप में परिभाषित किया है। उनका मानना था कि आन्तरिक प्रदूषण के कारण ही बाहरी प्रदूषण पैदा होता है। पहले मनुष्य के भीतर प्रदूषण की इच्छा जगती है, लोभ व लालसा उत्पन्न होती है और तब उसका प्रकटीकरण बाहरी प्रदूषण एवं असन्तुलन के रूप में होता है।

महर्षि चरक ने इसकी कारण- मीमांसा करते हुए बताया है कि यह असंतुलन या विषम स्थिति, काल, अर्थ और कर्म में विकृति आ जाने के कारण उत्पन्न होती है। 'काल' से तात्पर्य है - सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि ऋतुएँ। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध- ज्ञानेन्द्रियों के इन विषयों को उन्होंने 'अर्थ' से सम्बोधित किया है। 'कर्म' तीन प्रकार के बताये गये हैं- कायिक, मानसिक और वाचिक (अर्थात् काया, मनसा, वाचा)। उन्होंने कहा कि काल, अर्थ और कर्म इन तीनों में अतियोग (अर्थात् आवश्यकता से अधिक), अयोग (अर्थात् अभाव) या मिथ्यायोग। (अर्थात् दुरुपयोग) होने पर ही विकृति या विषम स्थिति (अर्थात् प्रदूषण) उत्पन्न होती है। महर्षि चरक ने यह भी कहा है कि धी, धृति और स्मृति में विकार उत्पन्न हो जाने अथवा इनके भ्रष्ट या असंतुलित हो जाने पर आन्तरिक प्रदूषण उत्पन्न होता है। इसीलिए उन्होंने कहा कि प्रदूषण की समस्या के केवल बाहरी कारणों पर विचार कर लेना और उनका समाधान कर लेना पर्याप्त नहीं है। आन्तरिक और बाहरी कारणों के समानान्तर समाधान का जब हम प्रयास करेंगे तभी प्रदूषण की समस्या के बारे में एक संतुलित-समग्र दृष्टिकोण अपनाया जा सकेगा।

पर्यावरण - प्रदूषण के विभिन्न रूप एवं उनके कारण

विद्वान, पर्यावरण - प्रदूषण के जिन विभिन्न रूपों की चर्चा करते हैं, उनमें मुख्य हैं; भूमण्डलीय ताप (अर्थात् धरती की तपन) में वृद्धि, ओजोन परत का पतला होते जाना, अम्ल वर्षा, वनों की जबरदस्त अंधाधुंध कटाई, और सागरीय प्रदूषण। कुल मिलाकर सरल भाषा में कहना हो तो आज हम मिट्टी, जल, वायु और ध्वनि प्रदूषण की समस्या से ग्रस्त हैं। प्रदूषण की यह समस्या पिछली

शताब्दी में और उसमें भी पिछले पचास वर्षों में अधिक गम्भीर बनी है। इसके मुख्य कारण इस प्रकार हैं:-

1. इस समस्या का मूलभूत कारण है - खण्डित यांत्रिक विश्व दृष्टि। इस दृष्टि के अनुसार यह मान लिया गया है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि एवं प्रकृति एक सृष्टि के समान है जो विभिन्न कल- पुर्जों से मिलकर बनी है। सृष्टि के किसी भी कल-पुर्जे को सृष्टि से अलग कर देने, उसे ठोकने- पीटने पर उस पर कोई असर नहीं होता, उसे कोई दर्द नहीं होता। जैसे हम सृष्टि से किसी भी कल पुर्जे को अलग कर उसके स्थान पर स्क्रू से दूसरा पुर्जा लगा सकते हैं, उसी प्रकार हम प्रकृति के भी विभिन्न भागों के साथ बर्ताव कर सकते हैं। इस मान्यता के कारण ही प्रकृति के प्रति संवेदनहीनता उत्पन्न हो गई है।

2. अंग्रेज वैज्ञानिक फ्रांसिस बेकन का मत था कि प्रकृति जड़ है और अपने आनन्द के लिए इसका अधिकाधिक उपयोग करना मनुष्य का अधिकार है। इस दृष्टिकोण ने प्रकृति को चुड़ैल व दासी माना है। इसी विचार के कारण ही प्रकृति के शोषण के विभिन्न तौर-तरीकों का जन्म हुआ जो अन्ततोगत्वा पर्यावरणीय हानि के कारण बने।

3. हमने अधिकाधिक उत्पादन और अधिकाधिक उपभोग पर आधारित विकास की गलत अवधारणा को स्वीकार कर लिया। इसके परिणामस्वरूप मनुष्य के मन में अधिकाधिक लालसायें जगने लगीं और इसने भी पर्यावरण को बहुत नुकसान पहुँचाया।

4. अगला कारण है गलत उत्पादन-तंत्र एवं गलत उत्पादन -तकनीक को अपनाना। आज का उत्पादन -तंत्र, तकनीक व टेक्नोलॉजी प्राकृतिक साधनों के अत्यधिक शोषण, ऊर्जा के अधिकाधिक उपयोग एवं भारी- भारी सृष्टि में से संचालित उद्योग-धन्धों पर आधारित है। उदाहरण के लिए कृषि के क्षेत्र में अपनाई गई तथाकथित नई टेक्नोलॉजी ने भूक्षरण, उर्वरा शक्ति के ह्रास, भूजल स्तर में कमी एवं कृषि उत्पादों में हानिप्रद रासायनिक तत्त्वों की वृद्धि जैसी समस्यायें उत्पन्न कर दी हैं।

5. अन्तिम और सबसे बड़ा कारण है दोषपूर्ण जीवन एवं उपभोग शैली। एयरकंडीशनिंग, फ्रिज, फोम के गद्दों, रंग -रोगन और रसायनों के बढ़ते प्रयोग के कारण पर्यावरण ह्रास एवं प्रदूषण की समस्या बढ़ गई है। सौन्दर्य प्रसाधनों के कारण जीव जन्तुओं की अनेक प्रजातियाँ नष्ट हो रही हैं। परिवहन, फैशन, पब्लिसिटी और पैकेजिंग भी प्रदूषण के सबसे बड़े कारण बन गये हैं।

पर्यावरण के सम्बन्ध में हिन्दू दृर्शन, दृष्टि और व्यवहार -

हिन्दू दर्शन सर्वंकश एकात्म विश्व दृष्टि में विश्वास रखता है। इसके अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि में एक सर्वांग सम्पूर्ण संतुलन पाया जाता है। सृष्टि, पर्यावरण और प्रकृति के बीच एक अन्योन्याश्रित, अविभाज्य सम्बन्ध पाया जाता है। यह ब्रह्माण्ड एक जीवन्त, चेतन और अविभाज्य इकाई है, अत: टुकड़ों में बाँटकर एक जड़ इकाई की तरह इसके साथ व्यवहार नहीं किया जा सकता। जो दर्शन सम्पूर्ण सृष्टि के तमाम अवयवों में एक ही परम सत्ता का दर्शन करता हो वह अनावश्यक जीव जन्तुओं को मारने और पेड़-पौधों को नष्ट करने के बारे में सोच ही नहीं सकता।

हिन्दू मनीषियों ने सृष्टि चक्र, यज्ञचक्र आदि नामों से एक प्रकृति चक्र का सिद्धान्त दिया है। उन्होंने प्रकृति को दिव्य और चेतन माना है। प्रकृति के विभिन्न अवयव जैसे भूमि, जल, वायु, जीव जन्तु और वनस्पति मिलकर एक जैविक परिवार बनाते हैं जो जीवन धारण प्रणाली (Life Support System) का आधार है।

इनके बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध पाये जाते हैं। भूमि, जल और वायु के बिना जीव-जन्तुओं और पेड़- पौधों का टिकना सम्भव नहीं; उसी प्रकार जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधों के कारण ही भूमि, जल और वायु का अस्तित्व है। इस प्रकार प्रकृति में अन्तर्सम्बन्धों का एक नेटवर्क (जाल) है, इसे ही आज की भाषा में 'समेकित जीवन धारण प्रणाली' (Unified life support system) कहा जाता है।

इस प्रकृति चक्र को बनाये रखने का नाम ही पर्यावरण संरक्षण या पर्यावरण संतुलन है। इस प्रकृति चक्र को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि हम प्रकृति से केवल लेने का काम ही न करें, बल्कि इसे देते भी रहें। प्रकृति के देवता तभी प्रसन्न रहते हैं जब व्यक्ति लेता भी है और देता भी है। सूर्य देवता वाष्प के रूप में जल लेते हैं तो वरुण देवता उसे वर्षा के रूप में जल वापस कर देते है। कुल मिलाकर, यह लेने-देने का क्रम चलते रहना चाहिए।

मनुष्य ने अपने लालच के कारण इस प्रकृति चक्र को नुकसान पहुँचाया है जिसके फलस्वरूप पर्यावरण में असन्तुलन उत्पन्न हो गया है। यदि हम विभिन्न प्रजातियों एवं जैव विविधता के बारे में विचार करेंगे तो पायेंगे कि वे भी एक-दूसरे पर निर्भर हैं। हरेक प्रजाति उन जैव रसायनों (bio-chemicals) का उत्पादन करती हैं जो किसी दूसरी प्रजाति के काम आते हैं। अत: किसी एक प्रजाति के नष्ट होने का मतलब है संतुलन चक्र का बिगड़ जाना। अत: हमें जैव विविधता की रक्षा करनी चाहिए। इस विश्व के अन्दर प्रत्येक जीव- जन्तु का अपना प्रयोजन है, उस प्रयोजन को पहचान कर योग्य तालमेल बनाये रखना आवश्यक है, इसी का नाम धर्म या पर्यावरण संतुलन है। सम्भवत: इसी कारण धर्म की परिभाषा करते हुए यह कहा गया है- 'धारणात् धर्ममित्याहु'।

हिन्दू चिन्तन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता प्रकृति के प्रति इसका दृष्टिकोण है । हिन्दू ने प्रकृति को माँ या देव के रूप में देखा और माना है। प्रकृति के प्रति हिन्दुत्व की दृष्टि सहअस्तित्त्व, सामंजस्य और सौहार्द के साथ मातृत्व एवं दैवीय भावयुक्त सम्मान दृष्टि है। यदि हम इस दृष्टि की पुनर्स्थापना कर पाते हैं तो सारी प्रणालियाँ, आचरण और व्यवस्थायें बदल जायेंगी। पश्चिम के भौतिकतावादी विचारक इस दृष्टिकोण को समझ पाने में असफल रहे हैं और इसलिए उन्होंने इसका सदैव मजाक ही बनाया है। जब हिन्दू धरती माता, गौमाता, तुलसी माता, गंगा माता, नाग देवता, चन्द्र देवता, सूर्य देवता आदि कह कर इनकी पूजा- अर्चना करता है तो पश्चिम के लोग इन्हें आदिम कालीन समाज के असभ्य लोग कहकर इनकी उपेक्षा करते रहे हैं। किन्तु अब पश्चिम के लोगों को भी प्रकृति का महत्त्व समझ में आने लगा है।

हमारी दृष्टि में प्रकृति से संघर्ष एवं प्रतिद्वन्द्विता नहीं; और इस पर विजय पाने का अहंकार भी नहीं - माता से भला कैसी होड़। अत: हम प्रकृति के शोषण में नहीं दोहन में विश्वास करते हैं। भारतीय संस्कृति में प्रकृति को परमेश्वर की शक्ति माना गया है। जब विकास में प्रकृति और संस्कृति दोनों का उपयोग किया जाता है तभी वह धारणक्षम और संस्कारक्षम बन पाता है।

अब हम जरा इस बात पर विचार करें कि हिन्दू शास्त्रों में किसकी पूजा है, वेदों में किसके गीत हैं, किसके मंत्र हैं। सूर्य, वरुण, अग्नि, इन्द्र आदि को देव माना गया है और हमारा वैदिक साहित्य इनकी स्तुति के मंत्रों से भरा पड़ा है। ऋग्वेद में मुख्य रूप से अग्नि की और यजुर्वेद में वायु की प्रार्थना है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में 63 मंत्र हैं, जिनमें धरती माता की प्रार्थना है। यह सूक्त धरती और पर्यावरण के सम्बन्ध में हिन्दू दृष्टिकोण को प्रकट करता है। यह पर्यावरणीय मूल्यों का सर्वोत्कृष्ट मार्गदर्शक है। ऋषि ने इस सूक्त में पृथ्वी के आधिभौतिक और आधिदैविक दोनों रूपों का स्तवन किया है और पृथ्वी को गंधवती, रसवती, अवनि, विष्णुरूपा परिपोषक, पालक, वसुन्धरा, कामदुग्धा, पयस्वति, सुरभि, धेनु, विश्वम्भरा, हिरण्यवक्षा आदि नामों से सम्बोधित किया है। धरा और धर्म दोनों का धृ धातु से सम्बन्ध है। दोनों से पोषण प्राप्त होता है और इनका ह्रास (या कमी) प्रदूषण व समस्यायें पैदा करता है।

सामवेद में मुख्यत: जल की अर्चना की गई है जो जीवन धारण के लिए अनिवार्य तत्त्व है। जल पीने, सिंचाई, सफाई, जीवजन्तुओं के आश्रय, भोजन व दवाओं

के निर्माण आदि के कार्यों में आता है। छान्दोग्य उपनिषद के अनुसार जल, पृथ्वी का सार है और पौधे (वनस्पति), जल का सार है। इसीलिए भारतीय परम्परा में नदियों व समुद्रों को देवरूप में माना गया है। और नदियों को माता मानकर उनका सम्बन्ध उर्वरा शक्ति से जोड़ा गया है। विश्व की प्रमुख सभ्यतायें नदियों के किनारे ही पली-बढ़ी है। भारतीय सभ्यता में जल-स्रोतों के पूजन की प्राचीन परम्परा रही है। महाभारत एवं अन्य सभी हिन्दू धर्मग्रन्थों में जल संरक्षण, जल प्रबन्धन एवं जलदान को पुण्य, यज्ञ, धर्म, अर्थ-काम का फल देने वाला अत्यन्त महत्व का करणीय कार्य माना गया है। अत: तालाब, नदी, कुएँ आदि को स्वच्छ रखने का परामर्श दिया गया है। पद्मपुराण में कहा गया है कि नदी के तटों को मूत्र, पुरीश, श्लेष्मा, निश्ठीवन, आंख के कीच, मल आदि से दूषित करने वाला पापी होता है। भारत नदियों का देश रहा है। नदी के तीर पर ही संस्कृति - सभ्यता का विकास हुआ है। कुंभ-महाकुंभ का आयोजन नदियों के किनारे ही होता है। हरिद्वार, ऋषिकेश, प्रयाग, काशी, नासिक, मथुरा- वृन्दावन आदि पवित्र नगर नदियों के किनारे ही बसे हैं।

भारतीय संस्कृति में सरोवरों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वर्षा के जल को सरोवरों में एकत्रित कर वर्ष भर इसके उपयोग करने की दृष्टि से सरोवर महत्वपूर्ण माध्यम रहे हैं। जल के महत्व को स्वीकार कर भारत में जल संचयन की सुदीर्घ परम्परागत प्रणालियाँ रही हैं, उन्हें पुनर्जीवित किया जाना चाहिए। भारत में कुछ जातियाँ सरोवर, कुएँ, बावड़ी आदि बनाने में सिद्धहस्त रही हैं जैसे कोली, अगरिया, परिहार, भील, मीणा, नायक, गरसिया, बंजारा, ओढ़िया आदि।

हमारे यहाँ विभिन्न देवी-देवताओं के वाहनों की कल्पना के पीछे भी पर्यावरणीय दृष्टि रही है। भगवान शंकर का वाहन नंदी, कुमार स्वामी का मोर, ब्रह्मा का हंस, विष्णु का गरुड़, गणेश का चूहा, लक्ष्मी का उल्लू, सरस्वती का हंस और दुर्गा का सिंह है। इन पशु पक्षियों की देवों के वाहनों के रूप में कल्पना के पीछे इनके संरक्षण एवं संवर्द्धन पर जोर देना ही रहा है।

विभिन्न व्रत-त्यौहारों के पीछे भी पर्यावरण-संरक्षण की ही अवधारणा काम कर रही है। वट सावित्री के दिन महिलायें वट वृक्ष की पूजा करती है। पीपल के वृक्ष की पूजा का भी अपने आप में बड़ा महत्व है। आँवला नवमी, तुलसी-पूजन, तुलसी का विवाह, कथा व पूजन में कदली (केले) का उपयोग, वन्दनवारी में आम, अशोक आदि के पत्तों का उपयोग, विजयादशमी पर शमी पत्र के प्रयोग आदि का विधान रहा है। विभिन्न देवी-देवताओं के पूजन - अर्चन में विभिन्न प्रकार के पत्र, पुष्प, फल का प्रयोग किया जाता है। होली, दिवाली, गोपाष्टमी, बसंतपंचमी, मकर संक्रान्ति आदि अनेक त्यौहार ऋतु- परिवर्तन से सम्बन्धित है। हमारे यहाँ के दशावतार पशु विकास की कहानी कहते हैं। कुल मिलाकर, प्रकृति के सम्बन्ध में हिन्दुओं की इस सम्पूर्ण मातृत्व दृष्टि को वर्तमान युग के परिप्रेक्ष्य में समझा जाना चाहिए। यदि इसे ठीक से समझ लिया तो फिर अपने मनोरंजन

व सुख-सुविधा के लिए प्रकृति पर विजय अथवा प्रकृति के शोषण की कहानी नहीं चलेगी। इस दृष्टि से रामचरितमानस का वह प्रसंग महत्वपूर्ण है जब लक्ष्मण के मूर्छित होने पर हनुमान जी संजीवनी बूटी ले आये तो वैद्य सुषेन ने उसे तुरन्त तोड़कर लक्ष्मण को नहीं पिला दिया। बल्कि उस संजीवनी बूटी के सामने खड़े होकर प्रार्थना की कि हे देवी संजीवनी ! मुझे बूटी तोड़ने की इजाजत दीजिए। यह है हिन्दू परम्परा। यदि हम तुलसी का पत्ता भी तोड़ते हैं तो हाथ जोड़कर लेते हैं। हरे पेड़ को नहीं काटना है, यह हमारे यहाँ अनपढ़ से अनपढ़ आदमी भी जानता है।

भारत की संस्कृति मुख्यत: अरण्य (वन) संस्कृति है। हमारे यहाँ जीवन के चार आश्रम माने गये हैं, इनमें से तीन आश्रम - ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास - वनों में निवास करने से ही सम्बन्धित हैं। चौथा गृहस्थ आश्रम भी अनेक कामों के लिए वनों पर निर्भर है। हमारे शिक्षा संस्थानों के आश्रम भी वनों में ही थे। वनों में ही दर्शन, साहित्य, अध्यात्म व विज्ञान का अध्ययन-अन्वेषण किया जाता रहा है। सिद्धार्थ पीपल (बोधिवृक्ष) के नीचे ही बुद्ध बने थे। हिमालय को शिवस्वरूप माना गया है। हिमालय के वन ही शिव की जटायें हैं- गंगा के तीव्र प्रवाह को शिव रूपी हिमालय ने इन्हीं वनों द्वारा रोककर पुन: पृथ्वी पर प्रवाहित किया था।

प्रकृति की ओर हम कैसे देखें और प्रकृति हमारी ओर कैसे देखे, इस सम्बन्ध में यजुर्वेद में एक बहुत सुन्दर मंत्र मिलता है। ऋषि कहता है-

'मित्रस्यमा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।''

-(यजु036-18)

इसमें तीन बातें कही गई हैं। पहली, सम्पूर्ण भूतप्राणी (यानि जीव-जन्तु) मेरी ओर मित्रता के भाव से देखें। इसी संकल्पना के आधार पर हिन्दू प्रार्थना करता है-

'प्रकृति: पंचभूतानि ग्रहा लोका स्वरास्तथा, दिश: कालश्च सर्वेशां सदा कुर्वन्तु मंगलम्।' इस प्रकार हमने प्रकृति के समस्त तत्त्वों से प्रार्थना की है कि वे हमारा मंगल करें, हम पर कृपा बनाये रखें। हमारे प्रति मित्रता का भाव रखें। दूसरी, प्रार्थना करने वाला कहता है कि मैं भी प्रकृति को मित्रभाव से देखूँ। यही प्रकृति के प्रति प्रेम, तकनीक-टेक्नोलॉजी और व्यवहार का हमारा आधार है। तीसरी, हम दोनों अर्थात् प्रकृति और मनुष्य एक-दूसरे को मित्रभाव से देखें। इस प्रकार, वास्तव में जीव - जगत के बीच घनिष्ठ व सार्थक समझदारी का नाम ही पर्यावरण चेतना है। हमारे वेद व साहित्य में ऐसे अनेक मंत्र मिलते हैं जिनमें देवतास्वरूप प्राकृतिक शक्तियों के सानिध्य की कामना की गई है। पर्यावरण के प्रति देव बुद्धि, देव दृष्टि और मातृभाव रखना हमारी संस्कृति में गहरे रूप में समाया हुआ है। इसी बात को सरल शब्दों में रामचरितमानस में इस प्रकार समझाया गया है-

''जड़ चेतन जग जीव जल सकल राममय जानि।
बंदऊँ सकल पद कमल सदा जोरि जुग पाणि।।''

(अर्थात् जड़, चेतन, जग, जीव और जल इन सबको मैं राममय मानकर उनके चरणकमलों की सदा वन्दना करता रहूँ)।

इसी पर्यावरण चेतना को ध्यान में रखते हुए हमारे यहाँ, सीमित, संयमित, सदाचारी जीवनशैली व उपभोगशैली पर सदा जोर रहा है। 'संयमो खलु जीवनम्' जैनदर्शन का यह सिद्धान्त संयमित जीवनशैली पर ही जोर देता है। इस प्रकार कुल मिलाकर हमें यह मानना होगा कि सम्पूर्ण हिन्दू दर्शन, हिन्दू दृष्टि, हिन्दू जीवन व्यवहार, हमारे तीज- त्यौहार, परम्परायें आदि हमेशा से ही पर्यावरण - प्रेमी रहे हैं।

अब समूचे विश्व में Ecology, Economy, Energy, Employment, Equity और Ethics को लेकर पुनर्चिन्तन प्रारम्भ हुआ है। जून 1992 में रिओ डी जेनिरो में पृथ्वी सम्मेलन आयोजित कर एजेण्डा - 21, नामक विश्व कार्य योजना को स्वीकार किया गया था। पर पर्यावरण की समस्या का स्थायी समाधान तो हिन्दू दृष्टि अपनाने में ही है। हिन्दू दृष्टि प्रेम के दायरे के विस्तार की दृष्टि है। हमारा नियंत्रण बाहर से नहीं; आंतरिक-नैतिक नियंत्रण के आग्रह का है। प्रकृति का संरक्षण हमारा स्वभाव बने और हम इसके साथ तादात्मय स्थापित करना सीखें। पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं के प्रति 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के भाव का विस्तार करें। हम पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले कार्यों से बचें और पर्यावरण का संरक्षण करने वाले कार्यों एवं व्यवहारों को अपनायें। जैसे बिजली, पानी, पेट्रोल-डीजल आदि के प्रयोग में सावधानी व संयम बरतें। कागज का दोनों ओर का पूरा उपयोग करें, स्टेपलर के स्थान पर आलपिन के प्रयोग को प्राथमिकता दें, सार्वजनिक वाहन एवं कार पुलिंग का प्रयोग कर पेट्रोल की खपत तथा वायु व ध्वनि प्रदूषण को कम किया जा सकता है। सामान लाने-ले जाने के लिए प्लास्टिक की थैलियों के स्थान पर जूट या कपड़े के थैले का प्रयोग करें। पेड़- पौधे लगायें एवं उनको पानी दें। पशु पक्षियों को न सतायें व उनके लिए दाना- पानी डालें।

पर्यावरण चेतना की दृष्टि से सदैव इस प्रार्थना को याद रखें -

ओउम् द्यौ: शान्तिरन्तरिक्षँ
शान्ति: पृथ्वी शांतिरापः
शांतिरोशथय: शांति:
वनस्पतय: शांतिर्विश्वे देवा:
शांतिब्रह्म शांति:,
सर्व शांति: शांतिरेव शांति:
सा मा शांतिरेधी।।
ओम् शांति: शांति: शांति:।।

- (यजुर्वेद 36-17) ❑

(मौलिक चिन्तक, लेखक)

पर्यावरण चेतना का पाठ्यक्रम

शरीर पंच तत्व से बना है- बाह्य प्रकृति के पंच तत्व सम्यक रहेंगे तो पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय अनुकूल रहेंगे- संवेदनशील रहेंगे, ये प्रतिकूल हुए तो वेदना उत्पन्न करेंगे, यही दु:ख का मूल है। अत: यह मंत्र सुखी होने का मंत्र है। हमारे प्रात: काल को ये सब मंगलमय करें- ऐसी आप सब की इच्छा है तो अपने-अपने हिस्से के प्रयत्न का संकल्प करो। अणुव्रत लो- प्रकृति के पंच भूतों को पुष्ट करने वाला कार्य ही करूँगा, अन्य नहीं। संवेदनशील मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है और जिज्ञाषु मन समाधान खोजता है। मानव-मन को संवेदनशील बनाने के लिए प्राचीन भारत में सोलह संस्कारों तथा चार आश्रमों की व्यवस्था थी। आज आश्रम का अभ्यास नहीं है और संस्कार व्यवस्था या तो लुप्त प्राय है या कर्मकाण्ड बन गई है अत: संवेदन जाग्रत करने के अन्य उपायों का पाठ्यक्रम में समावेश करना होगा।

❑ हनुमान सिंह राठौड़

हिन्दू वाङ्मय में एक गूढ वैज्ञानिक तथ्य की संस्कृत में सत्य उक्ति है- 'यत्पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे।' अर्थात् सूक्ष्म परमाणु से लेकर वृहद् ब्रह्माण्ड तक में व्यवस्था का सातत्य है। किसी एक को जानने से शेष सबको जाना जा सकता है। ऋषि ने अनन्त ब्रह्म को जानने के लिए सूक्ष्म आत्मा की अनुभूति का प्रयत्न किया। पर्यावरण के सम्बन्ध में भी ऐसा ही है। पर्यावरण संरक्षण या प्रदूषण जो भी बाह्य जगत में प्रत्यक्ष दिखायी देता है, उसका कारण मन का पर्यावरण है- बाहर तो उसकी अभिव्यक्ति है। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में मन के पर्यावरण को शुद्ध करने के समस्त उपाय किये जाते थे। आज भी हमें शुद्ध बाह्य पर्यावरण चाहिए तो उसी प्राचीन पद्धत्ति का अनुसरण करना होगा।

संवेदनशील मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है और जिज्ञाषु मन समाधान खोजता है। मानव-मन को संवेदनशील बनाने के लिए प्राचीन भारत में सोलह संस्कारों तथा चार आश्रमों की व्यवस्था थी। आज आश्रम का अभ्यास नहीं है और संस्कार व्यवस्था या तो लुप्त प्राय है या कर्मकाण्ड बन गई है अत: संवेदन जाग्रत करने के अन्य उपायों का पाठ्यक्रम में समावेश करना होगा। यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या पर्यावरण का पाठ्यक्रम नहीं है? उत्तर हाँ में आयेगा। पाठ्यक्रम है किन्तु कर्मकाण्ड है, परीक्षा की दृष्टि से अध्यापन कार्य किया जाता है। संस्कार की दृष्टि से नहीं क्योंकि अध्यापक की मनोभूमिका अपेक्षित परिणाम की जिद वाली नहीं है। वेतन भोगी अध्यापक यह कर भी नहीं सकता। यह करना है, यह करने के लिए परिवार के पेट की चिंता से मुक्ति के लिए वेतन है, ऐसे समर्पित शिक्षक आज भी दृश्य बदल सकते हैं, इसके उदाहरण हैं। अत: औपचारिक पाठ्य वस्तु के साथ कुछ साथियों द्वारा किये गये अनौपचारिक, किन्तु परिणामकारी प्रयत्नों का साक्षी बनने का अवसर मिला है। इसे पर्यावरण चेतना का अनौपचारिक पाठ्यक्रम कह सकते हैं। कुछ अनुभूत दृश्यों का आपके लिए पुनर्सृजन करता हूँ-

एक प्रार्थना ऐसी भी

प्रात: जागरण के उपरान्त भूमिवंदना का एक श्लोक बचपन से सुना है-

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।

इसका अर्थ भी सुगम है- 'हे पृथ्वी देवि। आप समुद्र रूपी वस्त्रों को धारण करने वाली हैं, पर्वत रूपी स्तनों से सुशोभित हैं तथा भगवान् विष्णु की आप पत्नी हैं, आपको नमन है, मेरे द्वारा होने वाले पैरों के स्पर्श के लिए आप मुझे क्षमा करें।' किन्तु इस अर्थ ने कभी वह अर्थग्रहण नहीं किया जो अपेक्षित हो। एक प्रार्थना सभा में प्रात: स्मरण के उपरान्त आचार्य ने इस श्लोक का विद्यार्थियों के मन को छू लेने वाला, भाव-विस्तार किया।

धरती पर जितना प्रतिशत जल है, उतना ही जलांश सजीवों में है। हमें जल कहाँ से प्राप्त होता है? वर्षा से। बादल जल कहाँ से लाते हैं?

समुद्र से। आप गंदा जल पीना चाहेंगे क्या? यदि पीना पड़े तो ठीक है, नहीं पीना चाहोगे क्योंकि बीमार हो जाओगे। किन्तु समुद्र ही प्रदूषित होगा तो बादल स्वच्छ जल कहाँ से लायेंगे? इसलिए धरती माँ के वस्त्र अर्थात् समुद्र स्वच्छ रहने चाहिए। आप माँ के वस्त्र स्वच्छ रखेंगे, तो आगे की उपमा सत्य होगी। बच्चा जन्म के बाद दूध से ही जीवित रहता है। 'जल ही जीवन है' ऐसा कहते हैं। वर्षा से नदियों में जल आता है। सब नदियों का उद्गम कहाँ है। पर्वत। जल रूपी जीवन-रस पर्वतों से दुग्ध-धाराओं की तरह प्रवाहित होता है, अत: पर्वतों को धरती माता के स्तन कहा है। दुग्ध-सरिताएँ अबाध प्रवाहित होने के लिए पर्वतों को सुरक्षित रखना होगा नहीं तो केदारनाथ जैसी दुर्घटना होगी। वृक्ष विहीन पर्वतों पर भू-स्खलन का अधिक खतरा है।

इस नये भाव के साथ सभी विद्यार्थी पुन: श्लोक को गाने लगे। इसका नित्य श्रद्धा-भाव से पाठ हो तो पर्यावरण चेतना के लिए चिंता नहीं करनी पड़ेगी।

कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्

वामन पुराण का श्लोक है किन्तु आदर्श पर्यावरण के विराट स्वरूप को नित्य संकल्प का पाठ बनाता है। हिन्दू तत्वदर्शन में यह शरीर पंचभौतिक माना जाता है। प्रकृति के यही तत्व अपनी आदर्श अवस्था में रहें तो मनुष्य का पंच कौशिक पिण्ड के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, प्राणिक तथा आध्यात्मिक विकास की सम्भावनाएँ बनती है। इसके अर्थ को उद्घाटित करने वाला प्रवचन एक विज्ञान के कालांश में सुनकर आनन्दित हो गया। विद्यार्थी भी अभिभूत थे। नित्य यदि अकेले अन्तर्मन पर ऐसे संस्कार हों तो?

वामन पुराण (14-26) का यह श्लोक है-

पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथाप:
स्पर्शी च वायुर्ज्वलितं च तेज:।
नभ: सशब्दं महता सहैव
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।

अब तक पढ़ा हुआ अर्थ अर्थ तो आज भी वही है-

'गंध युक्त पृथ्वी, रस युक्त जल, स्पर्श युक्त वायु, प्रज्ज्वलित तेज, शब्द सहित आकाश एवं महत्तत्व- ये सभी मेरे प्रात: काल को मंगलमय करें।'

पर उपरोक्त अर्थ, तदर्थ नहीं है।

भावों को नवोन्मेष, नये अर्थ उद्घाटित करता है, गूढअर्थ की लब्धि मानस के स्थायी भाव की सृष्टि करती है, ये ही संस्कार बनते हैं और इससे कृति का परिष्कार होता है।

पृथ्वी गंध युक्त हो सकती है, इसमें छात्रों को आश्चर्य नहीं था। मूलत: पृथ्वी सोंधी गंध युक्त है, यह उनके लिए आश्चर्य था। नित्य तो उन्हें दुर्गन्ध का ही साक्षात्कार होता है। वर्षाकाल था। छात्रों को शहर-गाँव की सीमा से दूर जाकर प्रथम वर्षा के तुरन्त बाद, आँखें बंद कर, धरती की गंध को अनुभव करने का अवसर दिया। उस गंध का केवल अनुभव किया जा सकता है, वर्णन नहीं। छात्रों को सुगंध व दुर्गन्ध के कारणों का स्वत: विश्लेषण करने का अनुभव प्राप्त हुआ। अब सरस जल की व्याख्या करने में छात्र ही समर्थ थे। अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर स्वच्छ व प्रदूषित जल के अन्तर को बताया और रस वह है जिसका शरीर स्वांगीकरण कर सके। अनावश्यक खनिजों से युक्त तथा आवश्यक खनिजों से रहित स्वच्छ जल सरस है।

'स्पर्शी वायु' पर गाड़ी अटकी। स्पर्श तो वायु की अनुभूति का आधार है। पर हमें सुखद स्पर्श चाहिए- शीतल, मंद, सुगंध समीर। वायु प्रदूषित होगी तो सुखद स्पर्श कैसे होगा? अपुनर्भरणीय उर्जा स्रोत जैसे गैस, कोयला, लकड़ी, पेट्रोलियम पदार्थ जैसे-जैसे उपयोग किये जाते हैं, इनकी कमी होती जाती है, ऊर्जा का तेज मंद होता जाता है, इसके उप-उत्पाद पर्यावरण क्षरण के कारण बनते हैं। हमें ऊर्जा का प्रज्ज्वलित तेज चाहिए तो पर्यावरण स्नेही वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों का शोध करना होगा। जैसे पवन ऊर्जा, सूर्य ऊर्जा आदि। आकाश शब्द सहित है, शोर सहित हमने कर दिया है। शब्द ही ब्रह्म है, क्योंकि हिरण्यगर्भ में विस्फोट से सर्वप्रथम शब्द की ही उत्पत्ति हुई। ओंकार यही मूल शब्द है। यह शब्द ही नित्य सुनाई दे अत: ध्वनि प्रदूषण से मुक्ति के उपाय करने पड़ेंगे।

शरीर पंच तत्व से बना है- बाह्य प्रकृति के पंच तत्व सम्यक रहेंगे तो पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय अनुकूल रहेंगे- संवेदनशील रहेंगे, ये प्रतिकूल हुए तो वेदना उत्पन्न करेंगे, यही दु:ख का मूल है। अत: यह मंत्र सुखी होने का मंत्र है। हमारे प्रात: काल को ये सब मंगलमय करें- ऐसी आप

सब की इच्छा है तो अपने-अपने हिस्से के प्रयत्न का संकल्प करो। अणुव्रत लो- प्रकृति के पंच भूतों को पुष्ट करने वाला कार्य ही करूँगा, अन्य नहीं।

दृश्यानुभूति

एक प्रयोग किया। प्रार्थना सभा के बाद सभी छात्रों से कहा कि आपको विद्यालय परिसर में पन्द्रह मिनट के लिए घूमना है तथा जो भी अनुपयोगी वस्तु लगे उसे ढूंढकर लाना है। छात्रों के लिए खेल हो गया। सब कुछ न कुछ एकत्रित करके लाये थे। सबसे कहा कि समान चीजों को एक साथ इकट्ठा करें। कागज, लकड़ी, प्लास्टिक, धातु के तार-कील, आदि ऐसे अलग-अलग ढेर लगे।

सर्वाधिक बड़ा ढेर कागज का था। कागज कैसे बनता है? प्रश्नोत्तर के माध्यम से अन्ततः उत्तर की ओर बढ़े। वृक्ष से कागज प्राप्त होता है। कागज लिखने के लिए चाहिए, या फाड़कर फेंकने के लिए, एक कागज बनाने में कितनी लकड़ी लगती है? गणित के प्रश्न पट्टी पर हल कर सकते हैं क्या, सीसा-पेंसिल से लिखकर बार-बार रबर से मिटा कर काम ले सकते हैं क्या? इस पर चर्चा हुई, सहमति बनी। पालीथीन, प्लास्टिक थैलियाँ, बॉटल कैसे हानि पहुँचाते हैं? एक गढ़ढे में कागज दूसरे में पॉलीथीन थैलियाँ डाली, मिट्टी से मुँह बंद कर नित्य पानी डालने को कहा। दो सप्ताह बाद खोला। परिणाम का वर्णन करने की आवश्यकता नहीं थी। गलनीय, अगलनीय कचरे का ध्यान आया। तीन श्रेणी विभाजन हुआ- गलनीय, अगलनीय, पुनर्चक्रण योग्य कचरा। पौधों से प्राप्त उत्पाद गलनीय है, खाद बनाते हैं, पॉलीथीन, प्लास्टिक अगलनीय है- इनका उपयोग क्रमशः बंद करना, इधर-उधर धातु, कागज आदि का पुनःचक्रण करना चाहिए- कबाड़ी व्यवसाय का महत्व छात्रों को समझ में आया। घर में भी कचरे का श्रेणी करण करेंगे यह संकल्प कई छात्रों ने लिया।

दृश्यानुभूति से संवेदना जाग्रत होती है- प्रदूषित पर्यावरण और वन-विहार का क्रमशः अवलोकन तथा परिचर्चा में से संकल्प जाग्रत होता है। विद्यालय की बड़ी कक्षाओं में कागज का अपव्यय रुका है, छोटी कक्षाओं में पट्टी का उपयोग बढ़ा है, कचरा पात्र में कचरा डालने का स्वभाव बना है, पौधों को पानी देने, शौचालय-लघुशंकालय के उपयोग के बाद पानी डालने के लिए कहना नहीं पड़ता- स्वभाव में आ गया है।

पर्यावरण संहिता भूमि सूक्त?

भूमि या पृथ्वी सूक्त को वैदिक राष्ट्रगीत कहते हैं, किन्तु यह पर्यावरण की ऋषि-संहिता भी है। छात्रों के स्वाध्याय-मण्डल में इसके पद्यानुवाद के वाचन-चिंतन-मनन-संवाद का आयोजन किया गया। व्याख्यान शैली ही प्रमुख थी। बीच-बीच में प्रश्नोत्तर शैली का उपयोग हुआ। इसे यदि पाठ्यक्रम का भाग बनाया जाय तो अद्‌भुत परिणाम प्राप्त हो सकते हैं, यह विचार आया। यदि भारत भूमि हमारे लिए पवित्र है तो पूज्य-आराध्य की साधना का परिवेश पवित्र रखना भक्त का कर्त्तव्य हो जाता है। दृष्टि का परिवर्तन सृष्टि का परिवर्तन करता है। अथर्ववेद, खण्ड-12 सूक्त-1 में कुल 63 मंत्र हैं। इन मंत्रों पर परिचर्चा से उभरे पर्यावरणीय चेतना-इच्छा-आकांक्षा के बिन्दुओं को लिपिबद्ध किया गया। इन्हें विद्यालय की भित्ति पत्रिका में लगाया गया। भूमि-सूक्त की सूक्तियाँ इस प्रकार हैं-

1. 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः' यह

धरती हमारी माता है, हम इसके पुत्र हैं। जन्मदात्री माता जैसे अपनी संतानों का पालन पोषण करती है, यह सब जड़ चेतन की धात्री है, अत: माता के पर्यावरण रूपी वस्त्रावरण की शुभ्रता, स्वच्छता प्रत्येक सत्पुत्र का कर्त्तव्य है।

2. हे धरती माता! आपके हिमाच्छादित पर्वत और वन हमारे लिए सुखदायक हैं।
3. इस भूमि का हृदय परम व्योम के सत्य-अमृत प्रवाह से आवृत रहता है अर्थात् पृथ्वी आकाश के सूक्ष्म अमृत प्रवाहों से पोषण प्राप्त करती है, अत: आकाश स्वच्छ, निर्मल, प्रदूषण रहित रहे ताकि यह प्रवाह अबाध बना रहे।
4. हे भूमे! आपकी सुगंधि औषधियों, वनस्पतियों में प्रविष्ट हुई, वायु ने उसे धारण किया, उसी सौंधी गंध से आप हमें सुरभित करें।
5. जिस भूमि में वृक्ष, वनस्पति और लतादि सदा स्थिर रहते हैं, अर्थात् धरती वन-विहीन बंजर नहीं होती- वह धर्म धारिणी, सर्वपालनकर्त्री धरती होती है, अर्थात् सस्य श्यामलाम्, सुजलाम् सुफलाम्, मलयज शीतलाम् धरती को हम शीश झुकाकर नमन करते हैं।
6. हे मातृभूमे! आप हमारी शुद्धता के लिए स्वच्छ जल प्रवाहित करें।
7. इस धरती पर सभी दिशाओं में विचरण हमारे लिए कल्याणकारी हो।
8. हे धरती माता! जब हम कृषि कार्य के लिए हलादि से आपको खोदें तो फसल शीघ्र उगे बढ़े। अनुसंधान के क्रम में हमारे द्वारा आपके मर्मस्थलों को अथवा हृदय को हानि न पहुँचे। अर्थात् अपने भोगवाद या स्वार्थ के लिए धरती को क्षत-विक्षत न करें।
9. सभी ऋतुएँ हमारे लिए सुखप्रद हों अर्थात् पर्यावरण चक्र को हमारी किसी कृति से क्षति न पहुँचे।
10. शांतिप्रद, सुगंधि सम्पन्न, सुखदायी अन्न को देने वाली, पयस्वनी मातृभूमि हमें उपभोग्य सामग्री और ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हो।
11. आप मनुष्यों को दु:खों से रहित करने वाली वांछित पदार्थ देने वाली हों।
12. स्वार्थपूर्ण महत्वाकांक्षाओं से ग्रस्त, भोगवादी मातृभूमि को पुष्ट नहीं कर सकते। सत्यनिष्ठ, यथार्थबोध, दक्ष, त्यागी, बलिदानी, तप: पूत क्षात्रतेज वाले पुत्र चाहिए।
13. यह रोग नाशक औषधियों को धारण करने वाली है, अत: इसका यह स्वरूप बना रहे।
14. धरती के सागर, महासागर, नदी आदि जलस्रोत, कृषि भूमि हमें श्रेष्ठ उपभोग के पदार्थ (रसायनों से प्रदूषित नहीं) और ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हों।
15. गो आदि प्राणी तथा अन्न प्रदाता- प्राणियों व वनस्पति का पालन-पोषण व संरक्षण करने वाली पृथ्वी का स्वरूप बना रहे।
16. सभी प्राणी आपसे ही उत्पन्न हैं, आपसे ही पालित-पोषित हैं।
17. पृथ्वी के मध्य भाग और औषधियों में, मेघ में, विद्युत में, पत्थर, मनुष्य में भी जठराग्नि के रूप में अग्नि तत्व विद्यमान है। अग्निदेव हमें प्रकाश से तेजस्विता से संयुक्त करें।
18. हे मातृभूमे! आप हमें कल्याणकारी प्रतिष्ठा से युक्त करें।

ऐसी प्रार्थना नित्य करने वाले पुत्र प्रकृति प्रेमी, पर्यावरण संरक्षक होंगे या विनाशक? फिर यह पाठ क्यों नहीं विद्यालय के लिए पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा हो? ❑

(व्याख्याता-कृषि, सामाजिक अध्येयता)

वर्ष प्रतिप्रदा पर रक्तदान शिविर का आयोजन

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) उपशाखा कनवास जिला कोटा के द्वारा वर्ष प्रतिप्रदा पर ग्राम देवली (मांजी) में रक्तदान शिविर का आयोजन किया गया। शिविर में 90 यूनिट्स रक्त एकत्रित हुआ।

कोटा ब्लड बैंक सोसायटी के सहयोग से आयोजित इस चतुर्थ रक्तदान शिविर के लिए उपशाखा अध्यक्ष प्रेमराज मीणा, कोषाध्यक्ष ओम प्रकाश मीणा तथा राजस्थान राज्य कर्मचारी महासंघ के अध्यक्ष भानु कुमार जैन के नेतृत्व में शिक्षकों से सघन संपर्क करते हुए संकल्प पत्र भरवाये गये तथा रक्तदान करने के लिए प्रेरित किया जिससे अच्छी संख्या में रक्तदान हुआ।

कार्यक्रम के उद्घाटन सत्र में मुख्य अतिथि देवलाल गोचर प्रदेश महामंत्री, विशिष्ट अतिथि देवकीनन्दन सुमन प्रदेश उपाध्यक्ष, उमेश शर्मा जिला अध्यक्ष, दिनेश स्वर्णकार जिलामंत्री थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता अजीत चौधरी थानाधिकारी देवली मांजी द्वारा की गई। उद्घाटन सत्र को संबोधित करते हुए मुख्य अतिथि श्री देवलाल गोचर ने कहा कि राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) संपूर्ण राजस्थान में सामाजिक सरोकार के कार्य आयोजित कर रहा है। संगठन का उद्देश्य शिक्षक समस्याओं के लिए संघर्ष करने के साथ-साथ समाज से जुड़ने का भी है इसके लिए संगठन वर्षभर अनेक कार्यक्रम आयोजित करता है।

प्रदेश उपाध्यक्ष देवकीनंदन सुमन ने अपने संबोधन में बताया कि कनवास उपशाखा लगातार चार वर्षों से रक्तदान शिविर आयोजित कर रही है। जो कि एक प्रशंसनीय कार्य है। इसके लिए सभी कार्यकर्ता साधुवाद के पात्र हैं।

प्रकृति, पंचतत्त्व और मानव

विधाता ने मानव को प्रकृति का अधिष्ठाता बनाकर भेजा है व परामर्श दिया कि मर्यादित प्रगति के साथ पर्यावरण ह्रास न हो, ऐसा प्रयास करें। परन्तु मानव ने विकास अपने अनुसार कराने का निर्णय लिया, आविष्कार हुए सुविधाएं बढ़ीं, औद्योगिक विकास की गति बढ़ी, परन्तु आध्यात्मिक विकास पीछे रह गया। गगन चुम्बी इमारते बनी, कल कारखाने विकसित हुए, परन्तु प्रकृति के साथ समन्वय बिगड़ने लगा, मनुष्य ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का विचार बना लिया, इसलिए संयमित उपयोग का स्थान उपभोग ने ले लिया, रमण का स्थान शोषण ने ले लिया, सुविधाएं बढ़ी, शांति घटी, पनघट सूने हो गये, पणिहारियों के गीत अर्थहीन हो गये, टी. वी. सीरियलों की चकाचौंध से संध्या की आरती प्रभावित हो गई, पत्रों के भाव मोबाइल में नष्ट हो गये, रसायनों की भार से धरती की उर्वरा शक्ति प्रभावित होने लगी।

❑ डॉ. मधुर मोहन रंगा

दार्शनिक दृष्टि से देखा जाय तो पर्यावरण ईश्वर की कृति है, सभी प्राणी, वनस्पति आदि प्रकृति की कृति हैं, अत: ईश्वर की कृति एवं प्रकृति की कृति के मध्य संतुलन बनाकर पर्यावरण का संरक्षण व संवर्द्धन किया जाना चाहिए। विधाता ने मानव को प्रकृति का अधिष्ठाता बनाकर भेजा है व परामर्श दिया कि मर्यादित प्रगति के साथ पर्यावरण ह्रास न हो, ऐसा प्रयास करें। परन्तु मानव ने विकास अपने अनुसार कराने का निर्णय लिया, आविष्कार हुए सुविधाएं बढ़ीं, औद्योगिक विकास की गति बढ़ी, परन्तु आध्यात्मिक विकास पीछे रह गया। गगन चुम्बी इमारतें बनी, कल कारखाने विकसित हुए, परन्तु प्रकृति के साथ समन्वय बिगड़ने लगा, मनुष्य ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का विचार बना लिया, इसलिए संयमित उपयोग का स्थान उपभोग ने ले लिया, रमण का स्थान शोषण ने ले लिया, सुविधाएं बढ़ी, शांति घटी, पनघट सूने हो गये, पणिहारियों के गीत अर्थहीन हो गये, टी. वी. सीरियलों की चकाचौंध से संध्या की आरती प्रभावित हो गई, पत्रों के भाव मोबाइल में नष्ट हो गये, रसायनों की भार से धरती की उर्वरा शक्ति प्रभावित होने लगी। भारत, इण्डिया हो गया, अत: इण्डिया को पुन: समृद्ध भारत बनाना है। यह तभी संभव है जब हम पर्यावरण चेतना में भारतीय दृष्टिकोण को अपनाये।

मनुष्य का प्रकृति के साथ अटूट संबंध है, तभी तो हमारे आचार्यों ने कहा कि **'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे'** अर्थात् जो इस पिण्ड या शरीर में है, वही ब्रह्माण्ड (प्रकृति) में है। शरीर और प्रकृति इनके तारतम्य के पीछे यदि कोई कारण है तो वे हैं, पंच-महाभूत अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु व आकाश। इन पाँच स्थिर भूतों से ही दृश्य जगत् उत्पन्न हुआ है और ये ही अव्यक्त प्रकृति में विद्यमान है। मनुष्य का क्रमिक विकास प्राकृतिक पर्यावरण से निरन्तर क्रिया व प्रतिक्रिया के कारण हुआ है। प्रकृति और मानव की अपनी विभिन्न अवस्थाएं मिल-जुल जाने के उपरान्त भी प्रकृति में परिवर्तन के अपने नियम है, फिर भी मानव और प्रकृति एक दूसरे पर निर्भर है। मानव समाज को अपने अस्तित्व हेतु प्राकृतिक सम्पदा प्राप्त करना नितांत आवश्यक है, किन्तु चिंतनशील एवं शक्तिशाली कहे जाने वाले मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों का जिस तरह से उपभोग किया जिससे पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ गया, जिसके फलस्वरूप भौतिकवाद एवं प्रकृतिवाद के बीच समन्वय एवं सहयोग का संबंध समाप्त हो गया।

हमारे प्राचीन चिंतकों ने सदैव प्रकृति की आराधना, अर्चना एवं प्रार्थना कर पारिस्थितिकी संतुलन को कायम रखा है। वेद साक्षी हैं कि हमने सदैव प्राकृतिक संसाधनों की पूजा की है। वेदों में कहा गया है-

'यो देवोद्रग्नों, योदुष्सु यो विश्व भवनमाविवेश।

यो औषधिक्ष यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमोनम: ॥'

अर्थात् जो अग्नि, जल, आकाश, पृथ्वी एवं वायु से आच्छादित हैं, जो औषधियों एवं वनस्पति में भी विद्यमान है, उस देव को हम नमस्कार करते हैं। हमने सदैव जलस्त्रोतों - गंगा, यमुना, सरस्वती आदि की पूजा की है, तुलसी, पीपल, बड़ आदि की अर्चना की है, सूर्य, चन्द्र आदि को नमन किया है, पृथ्वी को माता मानकर प्रणाम किया है तथा आकाश में आच्छादित वायुदेव का आह्वान् किया है। भारतीय संस्कृति के ये बीज मंत्र शुद्धि की भावना लिए हुए है तथा इनके मूलभाव में प्रकृति के पोषण भाव का उद्देश्य दृष्टिगोचर होता है और जब मनुष्य प्रकृति के पोषण के साथ-साथ अपने आपको प्रकृति के अनुरूप ढाल लेगा तब ही वह निरोगी अर्थात् स्वस्थ रह सकता है, इसकी पुष्टि प्राचीन

जीवनदर्शन-आयुर्वेद के आचार्य महर्षि चरक की संहिता के सूत्र **'यतः प्रकृतिश्चारोग्यम्:'** से होती है जिसका अर्थ है कि प्रकृति को ही आरोग्य कहते हैं।

प्राचीन भारत के वैदिक वाङ्मय में सूक्त, ऋचाएं एवं कथानक मिलते हैं, जिसमें प्रकृति का सुन्दर वर्णन करते हुए उसके संरक्षण एवं संवर्द्धन की बात कही गई है। महान् आयुर्वेदवेत्ता चरक ने अपनी चरक संहिता में मनुष्य एवं प्रकृति का अटूट संबंध बताया है व कहा कि मनुष्य को अपने आप को पर्यावरण के अनुसार ढालना चाहिये न कि पर्यावरण को अपने अनुसार, जबकि फ्रांसिस बेकन प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की बात को कहते हैं। सुश्रुत ने अपनी सुश्रुत संहिता में पर्यावरण में पायी जाने वाली वन औषधियों का वर्णन कर उनकी उपयोगिता को प्रतिपादित किया। वराहमिहिर ने वृहत संहिता के विभिन्न जैवसूचकांक का वर्णन किया है।

आज जीव विज्ञानी भी इन्हें (जैव सूचकांक) पर्यावरण में होने वाले परिवर्तन के रूप में देखते हैं। वृक्ष की महिमा बताते हुए मत्स्य-पुराण में महर्षि वेद व्यास ने कहा कि दस कुओं के बराबर एक बावड़ी है, दस बावड़ी के बराबर एक तालाब है, दस तालाब के बराबर एक पुत्र है, दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष है। इस प्रकार उन्होंने वृक्षों के संरक्षण संवर्द्धन की बात को स्पष्ट किया।

उल्लेखनीय है कि प्रत्येक कार्य के प्रारंभ में हम शांति पाठ करते हैं, सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो इसमें प्रकृति को ईश्वर मान कर पूजा की गई है व प्रकृति-पंचतत्त्व-मानव के संबंधों को उल्लेखित किया गया है, दार्शनिक दृष्टि से देखें तो यह जीव, जगत् व जगदीश के बीच संबंध व समन्वय का वर्णन किया है, जीव से तात्पर्य जैव विविधता है। जगत् से तात्पर्य सम्पूर्ण पर्यावरण है व जगदीश आध्यात्मिक दृष्टिकोण को प्रतिपादित करता है, अतः जब इस त्रिकोण की तीनों भुजाएं बराबर होगी उस दिशा में पर्यावरण संरक्षण व संवर्द्धन स्वतः ही हो जाएगा।

आज हम पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के बारे में वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग करते हैं, जबकि प्राचीन भारत में घाघ व भड्डरी नामक मौसम वैज्ञानिक हुए हैं जिन्होंने पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव का अध्ययन कर निम्न बात कही-

''ढेले उपर चील जो बोले,
गली गली में पानी डोले''
''अण्डे ले चींटी चढ़े,
चिड़िया नहावे धूल,
कहे भड्डरी वर्षा हो भरपूर''

हमारी संस्कृति में जैव विविधता के संरक्षण की बात को स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया गया है। हमने वन्य जीवों को सांस्कृतिक, सामाजिक व धार्मिक धरोहर के रूप में प्रमुख स्थान दिया है। वन्य जीवों को देवी-देवताओं के वाहन के रूप में

पूजनीय माना गया है। जैसे - माँ दुर्गा का वाहन - सिंह, भगवान् विष्णु का - गरुड़, भगवान् शंकर का - वृषभ, गणेशजी का - मूषक, कार्तिकेय का - मयूर, शीतलामाता का - गर्दभ, भैंरुजी का - श्वान। बच्छ बारस व गोपाष्टमी के दिन गाय व बछड़े की पूजा करते हैं, जबकि नाग-पंचमी व गोगा नवमी को नाग-देवता को दूध पिलाया जाता है व श्राद्ध पक्ष में - काग को खीर खिलाते हैं। प्रात: काल हमारे बुजुर्ग चींटियों को आटा डालते हैं, इसके पीछे यही सोच है कि निर्बलतम का रक्षण करना। उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्राणियों का संरक्षण संवर्द्धन के प्रति हमारी उत्कृष्ट सोच है। इसी प्रकार वनस्पतियों के संरक्षण के संबंध में भी हमारी स्पष्ट सोच है। हम प्राचीन काल से ही शुक्ल पक्ष की तेरस को, तारणा त्रयोदशी को, तेरह भिन्न अनाजों के मिश्रण युक्त भोजन बनाते हैं, तेरह ही हरी सब्जियों को मिलाकर सब्जी बनाते हैं। अत: तारणा-त्रयोदशी को मनाने की बात को ध्यान में रख कर अनाजों व सब्जियों के बीजों का संरक्षण करते हैं, यह दिवस निश्चित रूप से जैव-विविधता दिवस के रूप में मनाया जाता रहा है, जबकि आज हम इस विषय पर न जाने कितनी संगोष्ठी-सेमीनार व कॉन्फ्रेन्स कर देते हैं, उनका निष्कर्ष सिर्फ अकादमी अध्ययन व शोध के संदर्भ में ही रह जाते हैं, जबकि तारणा त्रयोदशी मनाना जैविक विविधता के संरक्षण का व्यावहारिक प्रयोग है। उल्लेखनीय है कि 1970 के भारत में चावल की एक लाख दस हजार प्रजातियाँ थी, परन्तु आज सिर्फ छ: हजार प्रजातियाँ ही है, यदि हम तारणा त्रयोदशी मनाते रहते तो अन्य वनस्पतियों की भी प्रजातियाँ सुरक्षित रहती, अक्षय तृतीया के अवसर पर हम मोटा (अक्षय) अनाज का उपयोग करते हैं, आज वैज्ञानिक कहते हैं कि मोटा अनाज शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है, कहते हैं कि सृष्टि के प्रवर्तक मनु ने प्रलय से पूर्व ही विविध अनाजों, फलों, सब्जियों व वनस्पतियों के बीजों को नौका में सुरक्षित रख लिया था।

प्राचीन काल से ही हमारे घरों में वैज्ञानिक पद्धति से **''हवन-यज्ञ''** होते हैं, इससे पौष्टिक पदार्थ के रूप में दूध, धी, अनाज, सुगन्धित पदार्थ के रूप में केसर, कस्तूरी, रोग निवारण के रूप में सोमलता, गिलोय व गुग्गल, मिष्ठान पदार्थ के रूप में शक्कर, गुड़ व शहद हवन में लेते हैं यह सभी पदार्थ एल्केलाइड, अमीनस, पोलीनिक पदार्थ टैनिक अम्ल, गैलिक अम्ल व साइक्लीक हरयनिक पदार्थ देते हैं, यह सभी पदार्थ वायु में जाकर हमारे श्वसन तंत्र में प्रवेश करते हैं व शरीर को कृमि रहित बनाते हैं। हवनों का वैज्ञानिक महत्व के साथ राष्ट्रीय महत्व भी है। हवन में उपयोगी सामग्री भारत के भिन्न भिन्न राज्यों से आती है, इस कारण व्यापक राष्ट्रीय सोच तो विकसित होती ही है। साथ ही आर्थिक तंत्र को भी मजबूती मिलती है। हवन में परिवार व समाज के सभी लोग सम्मिलित होकर हमारे सामाजिक ताने-बाने को दृढ़ता प्रदान करते हैं।

आज हमारे देश में त्वरित भोजन का अत्यधिक प्रचलन है वैज्ञानिक दृष्टि से देखे तो त्वरित भोजन में विटामिन 'ए', विटामिन 'सी' कैल्सियम, आयरन व रेशे नहीं है। यह हमारे शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक है। शीतल पेय में सेक्रीन व साक्लेमेट है जो हमारे गुर्दों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। भारतीय जीवन दृष्टि में सात्विक आहार के उपयोग का वर्णन है। हम ऋतुओं के अनुसार भोजन बनाते हैं, हमारे घरों में हर मांगलिक कार्य में गुड़ का प्रचलन है। गुड़ में कैल्सियम, फास्फोरस, आयरन, थाइमिन, राइबोफ्लेविन व विटामिन 'सी' है। जबकि शक्कर में यह सभी अनुपस्थित है, एक अध्ययन में कहा गया है **''गुड़ खाओ डायबिटीज भगाओ''**।

हमारे मनीषियों ने पर्यावरण का विस्तृत अध्ययन करते हुए बाह्य प्रदूषण व आन्तरिक प्रदूषण का वर्णन किया है बाह्य प्रदूषण से तात्पर्य पर्यावरण में होने वाले अप्राकृतिक परिवर्तन से है, जबकि आन्तरिक प्रदूषण 'मानसिक और बौद्धिक कुत्साओं' का परिणाम है। अत: हमें सर्वप्रथम इस आंतरिक प्रदूषण पर नियंत्रण करना होगा, तभी बाहरी विषम स्थिति पर नियंत्रण किया जाना संभव होगा। उपरोक्त वर्णित तथ्यों से स्पष्ट है कि प्राचीन काल से ही पर्यावरण चेतना के संबंध में हमारा स्पष्ट दृष्टिकोण है, हमारा मत है कि -

विश्व एक परिवार है,
जहाँ सबको जीने का अधिकार है,
त्याग पूर्वक उपयोग हमारा आधार है।
इसी में सभी का समग्र उद्धार है।

आइये, हम संकल्प करें कि कर्ण भेदी पोपो ब्राण्ड संगीत के कोलाहल में हम हमारे ''मधुर'' संगीत की सुर लहरियों के आरोह-अवरोह को न भूल जाए, एरोबिक नृत्य की धकापेल में हमारे घूमर व कत्थक को न भूल जाएं, धारावाहिकों की चकाचौंध में हम रामायण व महाभारत की चर्चा को न भूल जाएं, हम पर्यावरण के प्रति अवचेतन में न रह जाए और देर हो जाये, उपभोक्तावादी संस्कृति को त्याग कर मर्यादित औद्योगीकरण से पर्यावरण का संरक्षण व संवर्द्धन होगा, व्यक्ति को व्यक्ति केन्द्रित न होकर राष्ट्र व समाज केन्द्रित होना होगा, भारतीय चिंतन का समावेश पाठ्यक्रमों में करना होगा। विज्ञान व मानविकी विषयों में समन्वय स्थापित करना होगा, तभी हमारी पर्यावरण चेतना की भारतीय सोच साकार हो सकेगी।❑

(अध्यक्ष, राजस्थान विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षक संघ (राष्ट्रीय))

भारतीय पर्यावरण : दृष्टि और व्यवहार

❑ बजरंग प्रसाद मजेजी

हमारे पूर्वज प्रकृति के असंतुलन होने पर धरती पर होने वाले खतरों का पूर्वाभाष कर लेते थे। प्रकृति को मनुष्यमात्र के लिये सर्वाधिक फलदायी मानते थे। धरती को मातृवत मानकर जल, वायु, नदिया, पर्वत, वृक्ष, जलाशयों, को पूजनीय मानकर उनके संरक्षण की व्यवस्था करते थे। तुलसी, पीपल, वटवृक्ष, आंवला, खेजड़ी को पूजा जाता रहा है। धार्मिक ग्रन्थों एवं भावना के अनुसार पीपल, बरगद को ब्राह्मण मानकर, काटने पर ब्रह्म हत्या माना जाता था। इसके पीछे धारणा थी कि पीपल शुद्ध वायु (ऑक्सीजन) का भण्डार और बरगद अनेक पक्षियों का आश्रय स्थल और छाया देने वाला वृक्ष है। प्राचीनकाल से ही पेड़ों को सींचने (जल देने) की परम्परा आज भी चल रही है। यह संरक्षण का एक उपाय था।

वेदों में भारत भू को देवभूमि मानी गई है। यहां ऋषिगण यज्ञ और देवता रमण करते हैं। कहा तो यहां तक गया है कि यहां शेर और बकरी एक घाट पर पानी पीते थे। वन में सभी जीव मिलकर रहते थे। भारत भूमि की प्रकृति में गीत है-संगीत है, सौन्दर्य है। वृक्ष हैं- लताये हैं, चारों ओर हरियाली है। प्रकृति फूलों-फलों, पत्तों से आच्छादित हैं। खेतों में लहलहाते धान-सरसों के पीले फूल, सौंप, धनिये की सौंधी खुशबू, सूर्यमुखी के फूलों की खेती, रंग-बिरंगे फूल मोगरा, चमेली, गेंदा, गुलाब, टेसू के फूलों की छटा, जंगल में खुशबुहीन रंग-रंगीले आकर्षक फूलों के गुच्छे मानव को प्रकृति के इस माधुर्य को देखकर मदमस्त कर देते हैं। विभिन्न धर्मावलम्बी पर्यावरण संरक्षण हेतु उपदेशों में कहते आये हैं कि प्रकृति से प्रेम करना-ईश्वर से प्रेम करना और प्रकृति से खिलवाड़ करना विनाश को आमंत्रित करना है। हमारे पूर्वज प्रकृति के असंतुलन होने पर धरती पर होने वाले खतरों का पूर्वाभाष कर लेते थे। प्रकृति को मनुष्यमात्र के लिये सर्वाधिक फलदायी मानते थे। धरती को मातृवत मानकर जल, वायु, नदिया, पर्वत, वृक्ष, जलाशयों, को पूजनीय मानकर उनके संरक्षण की व्यवस्था करते थे। तुलसी, पीपल, वटवृक्ष, आंवला, खेजड़ी को पूजा जाता रहा है। धार्मिक ग्रन्थों एवं भावना के अनुसार पीपल, बरगद को ब्राह्मण मानकर, काटने पर ब्रह्म हत्या माना जाता था। इसके पीछे धारणा थी कि पीपल शुद्ध वायु (ऑक्सीजन) का भण्डार और बरगद अनेक पक्षियों का आश्रय स्थल और छाया देने वाला वृक्ष है। प्राचीनकाल से ही पेड़ों को सींचने (जल देने) की परम्परा आज भी चल रही है। यह संरक्षण का एक उपाय था।

भारत में वैदिक काल से मान्यता है कि प्रत्येक शक्ति एक देवता से अधिक कार्य करती है। उस देवता की पूजा करने में मनुष्य का कल्याण माना जाता था। आदिकाल से वृक्षों, नदियों को पूजने की परम्परा चली आ रही है। यही नहीं वन्यजीवों का संरक्षण, वृक्षों को न काटना, जल, अग्नि, वायु, आकाश, भूमि में देवताओं के निवास और देवतुल्य मानने की धारणा आज भी विद्यमान है। इन पंच तत्त्वों को ईश्वर स्वरूप मानते हैं। इसी संदर्भ में श्रीमद्भगवतगीता के अध्याय 10 के श्लोक 21-31 में श्री कृष्ण ने अर्जुन को संदेश देते हुए कहा है कि-'प्रकाशकों में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्र आठ वस्तुओं में अग्नि हूं, पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूं, जलाशयों में समुद्र, वृक्षों में पीपल, घोड़ों में उच्चै: श्रवा नामक घोड़ा, श्रेष्ठ हाथियों में ऐरावत हाथी, गायों में कामधेनु, सर्पों में वासुकि, नागों में शेषनाग, जलचरों में अधिपति वरुण देवता, पशुओं में मृगराज सिंह, पक्षियों में गरुड़ हूँ। पवित्र करने वालों में वायु, मछलियों में मगर नदियों में भागीरथी गंगा मैं हूं।' इस प्रकार प्रकृति में सर्वत्र देवता का निवास मानकर पूजने की प्रथा है। यही नहीं पंच-तत्वों को आधार मानकर ऋग्वेद-अग्नि, यजुर्वेद-वायु, सामवेद-जल, अथर्ववेद-मृदा को केन्द्रित कर पृथ्वी से आकाश को दायरे में रखकर अग्नि पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, वायु पुराण की प्रमाणिक रचना की है। अवतारों के प्रकटीकरण में मत्स्य अवतार, बराह अवतार, कच्छप अवतार, नृसिंह अवतार के माध्यम से संदेश दिया है कि जलचर, थलचर जीवों में देवताओं का निवास है और ये सांस्कृतिक परिवेश में उत्पन्न अशुद्ध पर्यावरण को शुद्ध करने में असांस्कृतिक कृत्य करने वालों का नाश कर मानव की सहायता करते हैं। भविष्य को दृष्टि में रखकर ऋषियों ने गोपाष्टमी, नागपंचमी, बच्छबारस, पीपलपूर्णिमा जैसी तिथियों के द्वारा वृक्षों-पशुओं के महत्व को स्मरण कराने हेतु नैतिक सूत्र 'जीओ और जीने दो' की सीमा बढ़ाकर चर-अचर, जीव-जड़ एवं प्रकृति तक मानव संबंधों का क्षेत्र विस्तार किया है तथा कहा है कि-सब धर्मों में धर्म महान-एक पेड़ दस पुत्र समान। हरित क्रांति का महत्व बताते हुए विद्वानों ने वनों की उपयोगिता के प्रसंग में कहा है कि-शिव समान वन पीते विष-कामधेनु सा देते धन।

वर्तमान में प्रदूषण का प्रभाव

पर्यावरण प्रदूषण आज समस्त विश्व की

समस्या है। प्रकृति का इस हाथ लो तो दूसरे हाथ से उसे वापस करने का शाश्वत सिद्धान्त अब गौण हो गया है। प्रकृति शोषण का अतंहीन सिलसिला आज हमें ऐसे मोड़ पर ले आया है कि मानव जीवन के अस्तित्व के लिये खतरा बढ़ गया है। आज के इस भौतिक युग में मनुष्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थ में अंधा हो गया है। हमारी प्राचीन धार्मिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं की मान-मर्यादाओं और भावनाओं को जीवन से तिरोहित करता जा रहा है। प्रकृति दोहन से अधिकाधिक अर्थतंत्र की भावना में वृद्धि होती जा रही है। ग्लोबल वार्मिंग विश्व की सबसे बड़ी समस्या है। तेजी से पिघलती बर्फ तथा ग्लेशियर से समुद्र का जलस्तर बढ़ रहा है। विश्वविद्यालय पर्यावरणविद-जेफ गुडल ने चेतावनी दी है कि जलवायु में भारी बदलाव के कारण इस सदी में 6 अरब जनसंख्या कालग्रास हो सकती है। इसी प्रकार सेंटर फोर साइंस एण्ड एन्वायरमेंट की रिपोर्ट के अनुसार 1993-2005 तक दिल्ली में बढ़ते प्रदूषण के कारण यमुना नदी के प्रदूषण में 25 प्रतिशत बढ़ोतरी हुई है। यमुना का पानी नहाने लायक भी नहीं रहा है। इसमें शहर के 25 नाले 250 से अधिक अवैध कॉलोनियों के 20 हजार क्यूसेक सीवेज, एक हजार टन गोबर, 300 टन ठोस कचरा प्रतिदिन यमुना में गिरता है। इसी प्रकार देश के 14 राज्यों में भूमिगत जल प्रदूषण के कारण फ्लूसेसिस से 50 लाख से अधिक लोग हड्डियों के कमजोर होने के रोग से ग्रसित हो रहे हैं विश्व में प्रतिवर्ष जलवायु परिवर्तन के कारण 325 करोड़ लोग बाढ़, सूखा और बीमारियों से प्रभावित हो रहे हैं। भोपाल गैस त्रासदी, भूकम्प, अमेरिका में बाढ़, आस्ट्रेलिया में भूस्खलन, चट्टानों के खिसकने की घटनायें, कार्बन डाई ऑक्साइड की अधिकता से बढ़ते प्रदूषण, ओजोन की परत पतली होने का कारण पर्यावरण प्रदूषण है। यह विश्व मानवता के लिए गंभीर खतरा है। वातावरण

में प्रदूषण फैलाने में कार्बन डाई ऑक्साइड, सल्फर डाई ऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, हवा में धूल, सल्फ्यूरिक अम्ल, क्रोमियम, आयरन, कृषि कीटनाशक रसायन, एथीलीन, यूरेनियम, प्लूटोनियम प्रदूषण करते हैं। समुद्र में परमाणु विस्फोटों से निकले रेडियोधर्मी पदार्थों से जलीय स्थलीय जीव प्रभावित हो रहे हैं। विस्फोटक क्षेत्र में भीषण गर्मी से अधिक वर्षा तथा जलवायु पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। मशीनीकरण, कारखानों से निकलने वाली जहरीली गैसों से लोग बीमार हो रहे हैं।

प्रदूषण से बचाने के उपाय

- ग्लोबल वार्मिंग को बढ़ाने वाले कारणों को नियंत्रित करने के लिए विश्व-स्तरीय प्रभावी कार्ययोजना की क्रियान्विति की जाये।
- बंजरभूमि, राजमार्गों, विद्यालय परिसर में वृक्षारोपण किया जाये।
- नदियों को स्वच्छ रखने हेतु सरकारी स्तर पर प्रयास करते हुए जनता की स्वच्छता हेतु जागृत किया जाये। सीवरेज लाइन को नदियों में नहीं मिलाया जाये।
- सूखी पहाड़ियों, नदी, खेतों के किनारे छायादार वृक्ष लगाये जायें।
- बालक एवं परिवार के व्यक्ति के जन्मदिन पर एक वृक्ष अवश्य लगायें।
- पर्यावरण सुरक्षा हेतु विद्यालय स्तर, समाज स्तर, राष्ट्र स्तर पर साहित्य का निर्माण कर प्रचार-प्रसार किया जाये।

पर्यावरणविद् रमेशचन्द्र अग्रवाल-छत्तीसगढ़, बाबूलाल जाजू-भीलवाड़ा (राजस्थान), कालोशेख पं. बंगाल ग्रीनमेन के नाम से वीरभूम जिले में 10000 वृक्षों को लगाने संरक्षण करने, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विधि स्नातक मदनमोहन मालवीय पर्यावरण पुरस्कार से पुरस्कृत 'ग्रीन बॉय द्वारा 5000 पौधों को लगाने का कीर्तिमान करने वाले पर्यावरण प्रेमियों से प्रेरणा लेकर प्रत्येक मानव को पर्यावरण सुरक्षा हेतु अपना योग देना होगा। यही नहीं हमें पर्यावरण प्रदूषण रोकने हेतु प्राकृतिक संसाधन, वायु, जल, भूमि, वन, जीव, राष्ट्रीय उद्यान-अभ्यारण्य, ऊर्जा, प्रदूषण के वाहक वाहन, ध्वनि नैतिक प्रदूषण बढ़ती जनसंख्या जैसे कारकों का विस्तृत प्रभाव और बचने की जानकारी देना होगा। पर्यावरण शिक्षा के द्वारा जलवायु परिवर्तन, भूमि परिवर्तन, जैव-विविधता, बंजर भूमि परिग्रहण हतु सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयत्नों की जानकारी देकर, सहयोग करना होगा।' ❑

(कोषाध्यक्ष, अ.भा.रा.शै.महासंघ)

Development and Environmentalism : Alternative From Traditional Knowledge

❑ Dr. Manoj Sinha

The significance of nature is not merely due to resources that it gives us in order to meet humanity's daily requirements. Nature is not just a conglomeration of resources; it is a complete system, which we are a part of. We cannot afford to nurture the idea of conquering nature, as it will turn on us. Hitherto it seems as if we have proven that we do not comprehend the all-pervasive character of nature, as we have not been prepared to see it as a holistic system, and have failed to see our role in it.

The modern era is the period of the new environmentalism. The rosy glow of the seventies is over. Fudging, nudging, compromise and accommodation are no longer satisfactory ways out. A very different picture is emerging in which a coalescence of nineteenth century romantic ideals, early twentieth century technical expertise and scientific understanding, and late twentieth century political lobbying and institution building is all taking place. It is however possible to locate the choices we are making for our lifestyle: Techno centrism is based on a man-centered view of the earth coupled with a managerial approach to resource development and environmental protection; Eco centrism is based on the belief that social relations cannot be disconnected from man-environment relations.

The Need for a New Perspective

At the time when Adam Smith was writing, life was short and harsh for most people. There was a constant struggle to satisfy even basic economic needs. Mankind was at Nature's mercy but today the position seems broadly to be the opposite. At the time, it seemed appropriate to emphasize the importance of increasing the material economic welfare of all by increasing their consumption of desired commodities. But per capita consumption levels in developed countries today greatly exceed that of those earlier times. Consumption levels are much greater than is needed to satisfy basic needs, and for most, permit a measure of luxury. Indeed, the health and welfare of some individuals in advanced countries, suffers as a result of their 'excessive' consumption of commodities, and as a result of their restless and never-ending desire for greater income and levels of material consumption. Therefore, it is legitimate to question in the case of the more developed countries whether an even higher level of material consumption per head is an appropriate goal.

There are also other reasons why we need a new perspective. Today we face prospects on a global scale of irreversible environmental damage from economic activities, of which the greenhouse phenomenon is just one example. Not only this, but we are uncertain about the occurrence of such impacts, their rate of onset, and their likely consequences. We face the possibility of sudden and irreversible leaps and bounds in environmental conditions. Past trends and signs may provide little forewarning of approaching economic and environmental collapse due to resource depletion and environmental degradation. By the time the signs of a future collapse become apparent, it may already be too late to reverse the deteriorating situation and avoid catastrophe.

The great English economist Alfred Marshall was able to declare in the last century that Nature does not proceed by leaps and bounds. In his framework of thought, certain marginal change is almost assured. But now we fear that nature may sometimes proceed by leaps and bounds and can do so in irreversible and unpredictable ways.

Since the effects of environmental changes can be widespread, even global, we can all be affected. Thus, everyone has a stake in what is happening to the environment. Our global environment is a shared resource. However, resolving our conflicts about the use of our shared environment is no easy task as many of us have varying attitudes to risk-taking and uncertainty, and there are differences in the relative gains and losses for each individual. This must be recognized and taken into account in forming our decisions about resource

use.

Humans have come to dominate nature but are still subject to its laws. There is no guarantee that mankind will continue to sustain and expand economic activity in the same way as in the past, despite all technological changes and optimism. There is a possibility of unwanted ecological impacts or disaster from economic growth. In such circumstances, it is essential to bring flexibility into resource and response systems.

Traditional Knowledge

The concerns for the natural environment have been married to the idea that human respect for nature is lost in the pursuit of material gains. Materialism, the production of goods from nature, represents an abdication of human responsibility to the natural world. It is possible to recognize the strength of ethical commitments in the environmental perspective. And these ethical concerns are not as recent as one may imagine. In a country like India, people have been conscious of environmental problem ever since the Vedic times. One finds mention in almost all ancient Hindu scriptures, as also those of Jainism and Buddhism, that nature and mankind form an integral part of the life support system. The Earth as the source of all life, non-human as well as human, has been considered to be an object of awe, love, reverence and worship as the mother goddess. The Sufi and the Bhakti saintpoets like Kabir, Chishti, Nanak and Tukaram, all sang of the unity and oneness of all that a wound inflicted on any element hurts the total system. That all things are useful to human beings and therefore should learn to live in harmony with non-human nature, is very well established by the story of Jivaka, who was notable to find even a single plant which was of no use to humans.

The ancient Hindu scriptures show that it has always been considered as a dharma or divine duty of individuals to protect the environment not only for their self-interest, but for the sake of protecting the environment itself. It also finds wide men specific duties of human beings towards humanity and Gods' Creations, which are called Manav Dharma. This concept of Manav Dharma, applies to every individual on the planet, and demands that all individuals must pay due respects to all other creation. It can be derived therefore, that a country like India, is deeply rootedin the concept of respect for nature in its culture and this respect forms a part of its social life.

The significance of nature is not merely due to resources that it gives us in order to meet humanity's daily requirements. Nature is not just a conglomeration of resources; it is a complete system, which we are a part of. We cannot afford to nurture the idea of conquering nature, as it will turn on us. Hitherto it seems as if we have proven that we do not comprehend the all-pervasive character of nature, as we have not been prepared to see it as a holistic system, and have failed to see our role in it.

The mysteries of nature revealed to man so far by science are only a negligible fraction of the processes of nature. Despite the various revelations science has made about nature, it shall remain true that a great deal more remains concealed from us. The knowledge derived from sense organs, or instruments, or by inference is always one-dimensional. Understanding nature is a multi-dimensional activity which can be experienced through intuition and not through sensory perception-A point which was continuously emphasised by Mahatma Gandhi. Therefore, to fully grasp the meaning of scientific knowledge, we have to depend on intuition. Our ancestors, who had experienced the truth internally, always held that metaphysically all existence is one and that it is not divisible. The divisions are only illusory. Our external experiences of the world reveal its plurality but through our internal experience it is possible to see the world as one. This ultimate reality experienced internally has been traditionally termed God, and this is the way Mahatma Gandhi tried to link God and Nature. This kind of knowledge had helped Indians to maintain a constant link with nature, because nature in its infinite forms and countless modes was believed to be the manifestation of God himself. This is why all beings in the universe were said to be interrelated. To maintain this relation, there was a need to strike a harmonious balance with each other. As soon as this harmony is destroyed, the internal organisation of nature will break down and therewill be none who would be able to escape its effects.

This knowledge-form, which constitutes how to live in harmony with nature without upsetting its balance, is termed astraditional knowledge. Loss of such valuable knowledge due to blind pursuit of

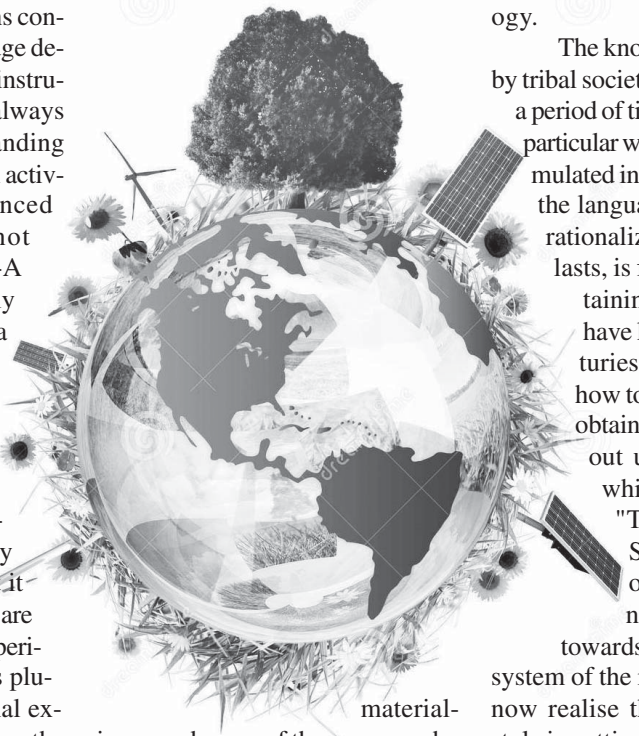

materialism may be one of the reasons why mankind has scored such spectacular success in destroying harmony. All over the world the biocentric tendency to traditional native thinking is now in the process of being redefined, as exemplified above in the case of India. Traditional native world views seem to have stressed several themes at odds with industrial capitalism: The unity and inter-relatedness of life ; the belief thatworld unfolds in a cyclic, not uni-linear way; a communal system of property, as against private ownership; detailed knowledge of nature; living in place (bioregionalism); self-regulation; population self-regulation; respect for all life-forms and their sacredness; as ustainable harvest of wild-life over thousands of years; and rituals that severely limit the destruction by humans of flora and fauna and the land itself. Obviously, such traditional native perspectives have a great deal of compatibility with ecology.

The knowledge base built up by tribal societies that evolved over a period of time, rationalizes their particular way of life which is formulated in a different language, the language of mythology. It rationalizes something which lasts, is fulfilling, and is sustaining. The people who have lived in India for centuries are likely to know how to farm the land. They obtain excellent yield without using the chemicals which poison the earth. "Their methods, E.F. Schumacher points out, "bear the mark of non-violence humility towards the infinitely subtle system of the modern world. If we now realise that the modern life style is putting us in to mortal danger, we may find it in our hearts to support and even join these pioneers rather than to ignore or ridicule them".

Gandhian Model and Alternative

Gandhian model is 'Alternative' oriented, decentralized, labour-intensive,and has agriculture at complete harmony with nature to satisfy the basic needs of society, and not the 'induced' demands of the elite consumers.

Alternative technology which aims at meeting the needs of every one in rural as well as urban sectors would reduce movements toward urbanization. With decentralization of production, based on the use of local materials, agricultural products with low energy con-

suming process, urbanization pressures would be reduced. Further, communities would develop in a manner in which they will be able to occupy themselves usefully, meet a set of their requirements, development facilities for their work and thus would be able to contribute creatively to society as a whole.

There should be complete co-ordination between policy makers, planners and environmentalists in protecting and conserving the environment. The developmental process has to be modified in such a way that there is complete harmony with the needs of the people and with the need to maintain ecological balance. A slight distortion in this pattern will bring catastrophe. Until and unless, we don't change our luxurious life styles and start living in harmony with self, society and nature, no numbers of 'conferences' or 'agendas' can save mother earth from disaster.

In India, where there is no greater source of moral authority, Gandhi has emerged as the patron saint of the environmental movement. In providing an environmental gloss to Gandhi's ideas, leading activists have invoked his ethics of self- restraint, his attacks on consumerism, and his celebration of self-sufficient village society as providing building-blocks for the construction of an environment friendly and harmonious alternative to modern industrial development. "By comparison, the cultural icons of the Western environmental movement are more often individuals, such as John Muir, who have tended to downplay human concerns in their defence of the unspoilt wilderness."

Gandhi's environmentalism had its roots in a deep antipathy to urban civilization and a belief in self-sufficiency, in self-negation and denial rather than wasteful consumption. Gandhi was not going back to nature but to the village and to peasantry as the heart and soul of India, to rural asceticism and harmony as against urban bustle and industrial strife. It is in this context that the Gandhian views of a sound and sustainable economy becomes a matter of interest to people of the Non-Western world. Gandhi looked beyond the market and into the consequences of industrialism for humans.

In a lecture delivered at Allahabad on 22 December 1916, Gandhi dealt with this basic issue and I quote: "Does economic progress clash with real progress. By economic progress, I take it, we mean material advancement without limit, and by real progress we mean moral progress which again is the same thing, as progress of the permanent element in us... in a well-ordered society, the security of one's livelihood should be and is bound to be the easiest thing in the world. Indeed, the test of orderliness in a country is not the number of millionaires it owns, but the absence of starvation among the masses".

The Gandhian approach provides on alternative to both individualism and socialism. This view gets confirmation and reinforcement, albeit debatable, from the stand point of Prof. Rajani Kothari and I quote: "Thus the attitudes engendered by our given perspective are some what different from those that move either to the establishment intellectuals committed to modernising the world in the image of the western Technological Civilisation, or the anti-establishment intellectuals from the same centres who are roaming the world after the fashion of new missionaries and preaching revolution".

The modern industrial urban civilisation makes it difficult to cultivate the values and virtues of civility - personal initiative and responsibility in concern for neighbourhood and community, and accountability for public conduct. High technology makes for largescale operations, automation, anonymity and alienation, migration and rootlessness, and fluid neighbourhood relations in urban settings. In addition, it propagates centralization of power in decision-making and large organizations that breed oligarchy and mass media that creates not only homogenization of mass society but also destroys local culture and traditions. The risk is greater for those people and societies that are backward in technology and know-how. Such people are unable to note and factor-in the power and influence of alien governments and cultures. The acquisition of modern gadgets and frills is hardly a healthy substitute for the loss of cultural identity, personal virtues and contentment.

Gandhi set before himself the tasks of achieving through Satyagraha political liberation from the alien rule, moral regeneration of the people through constructive programme, and economic self-reliance with eradication of unemployment and poverty. Gandhi perceived the challenges and problems the world is facing today. Although Gandhi laid the foundation, the edifice has yet to be built. His was a heroic effort, but all the signs indicate that the world has yet to live up to his message. This makes Gandhi so much more relevant than ever before. ❑

(Associate Professor, Department of Political Science
Ram Lal Anand College (Eve.)
University of Delhi)

Environmental Problems and Our Responsibilities

Consumer based economy has focused on use and throw concept rather than go for repair or recycle and decrease amount spent on consumer goods. We believe in three phases i.e. creation, nourishment and destruction i.e. represented by Brahma, Vishnu & Mahesh. Considering these three phases one can think of present day scenario. Creation of consumer goods is desired for better economy without much concern about second and third phase. Nourishment stands for sustainable uses enhancing its usable life. One should focus on durability of goods so that overall life cost reduces thus it goes in favour of overall low cost.

❑ **Dr. A. K. Gupta**

Our Consciousness is most important factor in today's Environmental related problems world is facing. This reminds me of the term coined by Sh Ram Madhav ji, during his recent visit to our town, Sustainable Consumption i.e. whatever we use or consume should be part of recycling process so that we can aim at Sustainable Consumption. In our Country right from beginning emphasis is placed on this concept by using Earthen pots and vegetable plates called "pattals", be it a feast where materials used could be recycled without disturbing ecological cycle. In the present time use of plastic or similar materials has raised this problem. These materials are not biodegradable thus enhance environmental problems. Use of plastics has made products economically competitive but at the same time has increased environmental threats creating junk of long lasting debris.

Consumer based economy has focused on use and throw concept rather than go for repair or recycle and decrease amount spent on consumer goods. We believe in three phases i.e. creation, nourishment and destruction i.e. represented by Brahma, Vishnu & Mahesh. Considering these three phases one can think of present day scenario. Creation of consumer goods is desired for better economy without much concern about second and third phase. Nourishment stands for sustainable uses enhancing its usable life. One should focus on durability of goods so that overall life cost reduces thus it goes in favour of overall low cost. However hardly anybody thinks about destruction stage which is inevitable. What will happen to remains of any good is where we can focus and find suitable solution. This creates real environmental threats to every concern as is seen in western world. In particular debris of demolition if not disposed of properly creates a general environmental problem.

Human being is considered source of generating waste materials thus is a major cause of threats to environmental problems. Basic human nature is self centered, one thinks about welfare of self and the family and not in general for betterment of the society. It's a general habit to throw waste materials away from one's own house but without thinking comforts of neighbours. Such a thinking has very threatening effect on the society leading to serous environmental problems. Solid waste creates a troublesome problem to dispose of it properly. Unplanned schemes may lead to serious accidental problems in air traffic as is seen by birds hit in nearby air strips. Effects of unplanned solid waste disposal can also lead to local polluted grounds and related problems to have its wide spread affects.

Population explosion has put our cities under serious threats for safe and cheerful environment. Various problems which the city has to face may be: Traffic or city transportation system, Water supply, Drainage systems, Power Supplies, Parking, Other related services. This in turn creates certain other problems e.g. traffic jams, high consumption of fuel and emitting gases which pollutes the environment, Use of un-pooled private vehicles further deteriorates the scenario by escalating pollution by more emitting gases and noise pollution as well. Cities have become centre of high heat hubs further increasing demand of more air conditioning in house and in turn in cars too, thus forming a vicious cycle. Longer time to complete a certain target in bigger city leads to psychological pressure and related disorders. This further deteriorates quality of life showing its impact in general to public or personal life. High blood pressure and diabetes is now has become more common even in younger generation. Exponential increase in pressures making it

difficult to lead cheerful life for a common man can be attributed to this.

Wasteful use of amply available water may lead to rising of ground water table which in turn causes various other problems including disruption of normal life, financial, structural to name a few. While planning all related factors should be considered, e.g. ground water table, type of soil, natural flow of drain water, wind flow direction and dust storms, Thermal variation, Rainfall, Transportation and allied systems their present and future requirement. Other threats natural or manmade should also be taken care of. Use of natural resources to minimise use of energy generated artificially by harnessing appropriate technologies should be applied, e.g. Solar passive construction, Use of Non conventional energy, Inter linking of rivers or natural drain system etc.

Scarcity of land or increasing land cost has put pressure on Administrative/ Political systems to allow unauthorized habitation i.e. development of colonies in otherwise not desired due possibility of manmade disasters later in case of urban flood i.e. when flow of natural stream is blocked and the system is put under pressure for compensation which could have been avoided and better used for some other purpose. Permitting construction of structures which may be vulnerable to natural disasters e.g. Earthquake, is further leading to undesired scenario. Preparedness and awareness by different means may provide an acceptable solution. Development of "sanskars" may be considered a part of it. Training at home for positive role of every one cannot ignored for its contributory role. No problem can be generated if everyone is concerned about others.

Planning of cities considering future expansion with addition of more self sustained suburbs having all basic facilities can lead to better quality of life through following sustainable consumption concept. Developing effective means of transportation, Communication, Education, Health and other services with potential of ample employment opportunities can be good model to follow in developing smaller modular towns to add to.

Education has an important role to play since early development of environmental related consciousness can prevent hazards to happen. Environment related information i.e. Government policies, rules/ regulation/ beneficiary schemes, agencies dealing with these, should be made known to a common citizen.

Legal regime has its role to play if it is applied effectively. This needs technical support to make this more effective. However voluntry services has no match for this. Therefore creation of consciousness is more fruitful vis-a-vis efforts made by education system.

It should be concern of every common person to think about nation's economy and role of environment to influence it. Every small point should be considered may it be affect of construction of Highways on life of human and animal habitats. Any threat to deterioration of ambient environment should be considered seriously, may it be otherwise beneficial for escalating economy of the nation. While setting up any new project these considerations become important to decide fate of neighbouring habitats.

Creation of GOD in human life should be a great concern for all of us. In the entire universe possibility of life on our planet should be protected and nourished. It should be our collaborative effort to keep our planet blue one else it may turn in to lifeless Red Planet without life. Planet Earth is our shared island, let us join forces to protect it- Ban Ki-Moon. ❑

(Professor, Jai Narain Vyas University, Jodhpur)

पर्यावरण संरक्षण को सर्वाधिक महत्व देने वाली संस्कृति के प्रतिपादक भारत को आज विदेशों से पर्यावरण शिक्षा प्राप्त करनी पड़ रही है। शिक्षक के नाते हमें यह जानने की आवश्यकता कि भारत में पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा नहीं पर्यावरण संरक्षण के संस्कार दिए जाते थे। स्थिति तो उपभोक्ता संस्कृति के प्रचार के बाद बिगड़ी है। भारत में पर्यावरण संरक्षण के संस्कार देने में स्कूल की बजाय परिवार की भूमिका प्रमुख होती थी। हमें आज भी पर्यावरण शिक्षा के बजाय संस्कार देने की योजना बनानी चाहिए।

जलवायु परिवर्तनः क्या बुरे दिन आने वाले हैं ?

❑ विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी

लोकसभा चुनाव 2014 में एक राजनैतिक दल द्वारा भारत के सन्दर्भ में जारी एक विज्ञापन की एक पंक्ति थी- अच्छे दिन आने वाले हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जलवायु परिवर्तन पर गठित अन्तर शासकीय दल की रिपोर्ट पर विश्वास करें तो यह कहना होगा कि बुरे दिन आने वाले हैं। रिपोर्ट का कहना है कि एशिया पीने के पानी की कमी से जूझ रहा है मगर इक्कीसवीं सदी के आने वाले वर्षों में पानी व अन्न की कमी से उत्पन्न तनाव के कारण भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश, चीन, श्रीलंका आदि पड़ौसी मुल्कों में इन्हीं बातों पर सशस्त्र युद्ध भी हो सकता है। यदि कुछ विशिष्ट कदम नहीं उठाए गए तो अन्य विकासमान आर्थिक शक्तियों की तरह भारत में भी वैश्विक उष्मायन के कारण बढ़ते औसत तापमान के कारण भारत के सकल राष्ट्रीय उत्पादन में 3 प्रतिशत तक की कमी आ सकती है। जलवायु परिवर्तन के कारण असमय होने वाली भीषण वर्षा, चक्रवात, बादल फटना, बाढ़, सूखा आदि उत्पादन कम करने के साथ ही जानमाल की हानि का कारण बनेंगे। रिपोर्ट के अनुसार वैसे तो विश्व में मौसम की मार से कोई भी बच नहीं पाएगा मगर सर्वाधिक प्रभावित होने वाले देशों में भारत भी है। भारत के 120 करोड़ लोगों का जीवन इससे बुरी तरह प्रभावित होगा।

भारत के समुद्री किनारे अधिक प्रभावित होंगे, जिसका विपरीत प्रभाव गोवा, केरल आदि में पर्यटन व्यवसाय पर होगा। समुद्र की हलचल से किनारे के रिसोर्ट नष्ट होने के साथ ही गर्मी के कारण भी लोग समुद्र किनारे की बजाय ठण्डे स्थानों पर जाना पसन्द करेंगे। रिपोर्ट में विभिन्न देशों को व्यक्तिगत स्तर पर होने वाली हानि का उल्लेख तो नहीं किया है मगर क्षेत्रीय स्तर पर होने वाले प्रभाव का भारत के लिए चिन्ताजनक स्थिति उभरती है। भारत के सिन्धु-गंगा मैदान पर अधिक बुरा प्रभाव होने का अर्थ कि यहाँ की गरीब जनता के कष्ट और बढ़ जाएंगे। सिन्धु व ब्रह्मपुत्र नदियों के संग्रहण क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों के कारण जब तब बाढ़ के प्रकोप से परेशान रहा है यह क्षेत्र आगामी समय में सूखे के संकटों का शिकार हो सकता है। मौसम परिवर्तनों का विपरीत प्रभाव सुरक्षा व्यवस्था पर भी होगा। मुबंई व कोलकता जैसे महानगर समुद्री सतह के ऊपर उठने से परेशान होंगे। रिपोर्ट में कहा गया है कि शताब्दी के अन्त तक औसत तापक्रम में 0.3 से 4.8 अंश सेन्टीग्रेड की वृद्धि के कारण समुद्र तल 32 इंच तक ऊपर उठ सकता है।

2050 तक मछली उत्पादन बहुत गिर जाने के कारण भारतीय आबादी के एक बड़े भाग की परेशानी बहुत बढ़ जाने की आशंका है। ग्लेशियरों

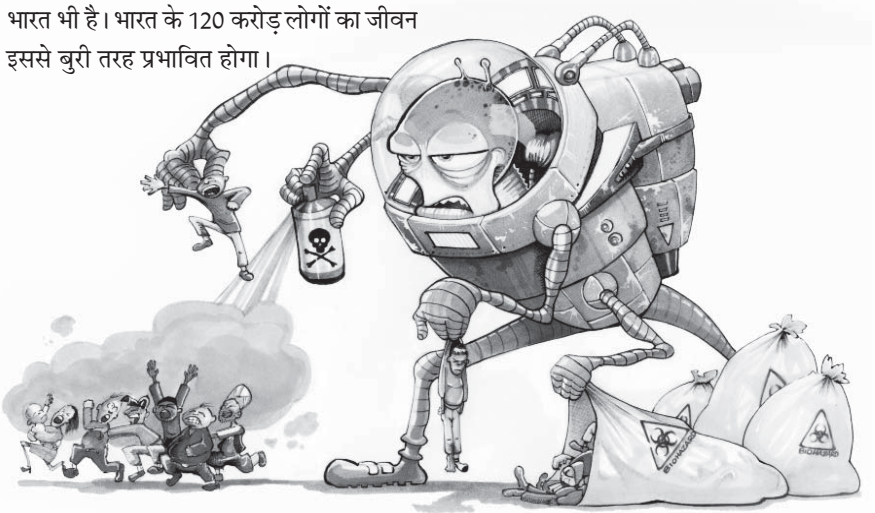

के तेजी पिघलने के कारण देश के जलतन्त्र पर विपरीत प्रभाव होगा और खेती के साथ पीने के पानी का संकट उत्पन्न होगा। बढ़ता तापक्रम मानव स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव डालेगा। मूलभूत सुविधाओं जैसे सड़क, बन्दरगाह, हवाईअड्डों के नष्ट होने के कारण भी लोगों के जीवन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। मँहगाई अनियन्त्रित हो जाएगी। गरीब लोग सबसे अधिक प्रभावित होंगे।

सिक्के का दूसरा पहलू

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा गठित अन्तर शासकीय दल की जलवायु परिवर्तन रिपोर्ट को अब तक की सबसे बड़ी वैज्ञानिक रिपोर्ट बताया जा रहा है मगर अनेक विशेषज्ञ इससे सहमति नहीं रखते। उनका कहना है कि जलवायु परिवर्तन हो रहा है मगर इसमें मानव की कोई भूमिका नहीं है। भूमि के गर्म होने व फिर ठण्डे होने की प्रक्रिया चलती रहती है। ऐसा पहले भी कई बार हो चुका है। ऐसे लोगों का मानना है कि सत्ता में बैठे लोग कर बढ़ाने हेतु मानव को दोषी ठहरा रहे हैं। इन लोगों का मानना है कि अन्तर शासकीय दल की रिपोर्ट में ऐसा कुछ नहीं है जिसे खबर कहा जा सके। मीडियावालों से मिल कर भ्रम फैलाया जा रहा है। दल द्वारा की गई भविष्यवाणियां पिछले 17 वर्ष में तो घटी नहीं तो फिर 80 वर्ष बाद ऐसा होगा, कैसे स्वीकारा जा सकता है। जलवायु परिवर्तन के अध्ययन के लिए प्रसिद्ध मेसाच्यूटसैट्स तकनीकी संस्थान के प्रोफेसर रिचार्ड लिण्डजेन का कहना है कि अब तक हुए जलवायु परिवर्तन इतने छोटे हैं कि इनका वैश्विक उष्मायन से कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रोफेसर रिचर्ड का मानना है कि राजनेता, पूंजीपतियों के साथ मिल कर अपनी सत्ता को मजबूत करने हेतु यह सब प्रचारित करवा रहे हैं। जलवायु परिवर्तन प्रकृति का अंग है, उसे विनाश का पर्याय बना कर लोगों को नहीं डराया जाना चाहिए।

क्या सोचते हैं भारत के लोग?

जलवायु परिवर्तन के विषय में भारत में कितनी चेतना है? भारत के विभिन्न स्तरों के लोग इस विषय में क्या सोच रखते हैं? यह जानने हेतु एक विस्तृत अध्ययन येल विश्वविद्यालय के डॉ. एन्थोनी लीएजरोविट्ज के नेतृत्व में जगदीश ठकर द्वारा 2010 में किया गया था। अध्ययन की प्रस्तावना संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जलवायु परिवर्तन पर गठित अन्तर शासकीय दल के अध्यक्ष डॉ.राजेन्द्र के.पचैरी द्वारा लिखी गई है।

चार हजार से अधिक वयस्क लोगों से प्रश्नोत्तरी के माध्यम से किए गए अध्ययन में पाया गया कि भारत के 80 प्रतिशत लोग मानते हैं कि पिछले 10 वर्ष में उनके क्षेत्र में वर्षा का व्यवहार बदल गया है। 40 प्रतिशत का कहना था कि वर्षा कम होने लगी है तो 34 प्रतिशत मानते हैं कि वर्षा बढ़ रही है। 38 प्रतिशत का कहना था कि मानसून पहले की तुलना में अधिक अनियमित होता जा रहा है।

65 प्रतिशत लोग मानते हैं कि क्षेत्र में एक वर्ष सूखा पड़ने पर पानी व खाद्य पदार्थों की कमी के कारण उनके लिए परेशानी उत्पन्न हो जाती है। इनका मानना था कि सूखे से उत्पन्न परेशानी से उबरने में उन्हें कई माह लग जाते हैं। जब उनसे वैश्विक उष्मायन के विषय में पूछा गया तो केवल 7 प्रतिशत लोगों ही इस शब्द से परिचित पाए गए। जब वैश्विक उष्मायन की जानकारी देकर प्रश्न किए गए तो 67 प्रतिशत ने माना कि वैश्विक उष्मायन भविष्य में मनुष्य, पशु-पक्षी, पेड़-पौधों को हानि पहुँचाने वाला है। 50 प्रतिशत का मानना था कि बुरे दिन प्रारम्भ हो गए हैं। 70 प्रतिशत लोगों का कहना था कि वैश्विक उष्मायन के विषय में जन चेतना उत्पन्न की जानी चाहिए तथा भारत सरकार को राष्ट्रीय स्तर पर वैश्विक उष्मायन को रोकने के प्रयास करने चाहिए। उनका विश्वास था कि पर्यावरण संरक्षण से ही आर्थिक विकास और लोगों के लिए रोजगार संभव है।

अध्ययन में पाया गया कि भारत के आधे लोग जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध

व्यक्तिगत प्रयास को महत्व देते हैं तो इतने ही लोग भाग्य भरोसे रहने में विश्वास करते हैं। अध्ययन से एक तथ्य यह भी उभर कर आया कि भारत के आधे से अधिक लोग इस बात में विश्वास करते हैं कि आर्थिक विकास की दर की कमी को सहन करके भी हमें पर्यावरण को संरक्षित रखना चाहिए।

क्या हो पर्यावरण चेतना नीति ?

संयुक्त राष्ट्र संघ के आह्वान पर पर्यावरण चेतना उत्पन्न करने का प्रयास भारत में बहुत पहले ही प्रारम्भ हो चुका है। प्राथमिक स्तर से बारवीं कक्षा तक पर्यावरण शिक्षा को अनिवार्य विषय बना कर मोटी मोटी पुस्तकें बच्चों को पढ़ाई जाने लगी हैं। विद्यालय स्तर पर परीक्षा लेकर उनको अच्छे अंकों के साथ पर्यावरण विषय में उत्तीर्ण भी घोषित किया जाने लगा हैं। येल विश्वविद्यालय द्वारा किए गए अध्ययन से स्पष्ट है कि परिणाम वही ढाक के तीन पात वाला रहा है। अन्य विषयों की शिक्षा तरह पर्यावरण शिक्षा भी मात्र औपचारिकता बन कर रह गई। पर्यावरण संरक्षण को सर्वाधिक महत्व देने वाली संस्कृति के प्रतिपादक भारत को आज विदेशों से पर्यावरण शिक्षा प्राप्त करनी पड़ रही है। शिक्षक के नाते हमें यह जानने की आवश्यकता कि भारत में पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा नहीं पर्यावरण संरक्षण के संस्कार दिए जाते थे। स्थिति तो उपभोक्ता संस्कृति के प्रचार के बाद बिगड़ी है। भारत में पर्यावरण संरक्षण के संस्कार देने में स्कूल की बजाय परिवार की भूमिका प्रमुख होती थी। हमें आज भी पर्यावरण शिक्षा के बजाय संस्कार देने की योजना बनानी चाहिए।

लोकसभा चुनाव 2014 के प्रचार अभियान का एक उज्ज्वल पक्ष यह रहा है कि उसमें विकास के साथ पर्यावरण संरक्षण एक प्रमुख मुद्दा बना है। विकास की बात करते समय हमें इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि हमारा विकास का मॉडल क्या होगा? विकास के अमेरिकी मॉडल को नहीं अपनाया जा सकता। भारत को अपनी संस्कृति व आज की आवश्यकता के मध्य सामंजस्य बैठा कर चलना होगा। ग्रामीण विकास के साथ 100 आधुनिक शहर बसाने की विरोधाभासी बात भी चुनाव प्रचार में सामने आई है। पर्यावरण संरक्षण की प्रबल हिमायती श्रीमती मेनका गांधी ने नदियों के जोड़ने की बात का विरोध कर विकास की अवधारणा पर गम्भीर बहस की शुरुआत की है।

चुनाव प्रचार में काशी के केन्द्र में आने के कारण गंगा को अविरल व निर्मल करने का आश्वासन भारतीय जनता पार्टी द्वारा बहुत ही गम्भीरता से दिया गया है। गंगा को अविरल व निर्मल करने का गम्भीर प्रयास सरकार करती है तो देश में पर्यावरण चेतना स्वत: ही उत्पन्न हो जाएगी। गंगा को महत्व देकर हमारे बुजर्गों ने पर्यावरण संरक्षण का जो पाठ हमें पढ़ाया था उसके सही रूप में दोहराया जाना आज की आवश्यकता है। इस पाठ को दोहराने में नेतृत्व को ईमानदारी व तत्परता दिखानी होगी। हमें आज की पीढ़ी को समझाना होगा कि भारतीय संस्कृति में प्रचारित जल देवता, पवन देवता, धरती माता, वन देवता आदि की अवधारणाएं मात्र अंधविश्वास नहीं है। इनके पीछे प्रबल वैज्ञानिक पक्ष है। पर्यावरण संरक्षण संस्कृति के प्रसार से ही भारत के साथ विश्व कल्याण का सपना साकार हो सकेगा। ❑

(बाल एवं विज्ञान विषयक लेखक)

ज्ञान और विज्ञान हैं सहोदर

ज्ञान और विज्ञान सहोदर हैं। ज्ञान अर्थात चेतना को मानवी गरिमा के अनुरूप चिन्तन तथा चरित्र के लिए आस्थावान बनने तथा बनाने की प्रक्रिया। मनुष्य में भी जन्मजात रूप से पशु, प्रवृत्तियां भरी होती हैं। उन्हें परिमार्जित करके सुसंस्कारी व आदर्शवादी बनाने का काम जिस चिन्तन पद्धति का है, उसे ज्ञान कहा गया है। यदि ज्ञान पवित्र, श्रेष्ठ और उत्साहवर्द्धक हो तो वही शरीर ऐसा काम करते हुए दिखाई देगा जिनसे असंख्य लोगों को प्रेरणा मिले और उसका अनुगमन करने वालों के लिए भी प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो। ज्ञान आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित है और वह चेतना क्षेत्र को प्रभावित करके उचित-अनुचित का अन्तर करना सिखाता है। दूरदर्शी विवेकशीलता के आधार पर जो निर्णय या निर्धारण किए जाते हैं, उन्हें ज्ञान का, सद्ज्ञान का ही अनुदान कहना चाहिए। ज्ञान का सहोदर है-विज्ञान। विज्ञान अर्थात पदार्थ ज्ञान। हमारे चारों ओर अगणित वस्तुएं बिखरी पड़ी हैं। वे मूलरूप में प्राय: निरर्थक जैसी हैं। उन्हें उपयोगी बनाने और उनकी विशेषताएं समझने की प्रक्रिया विज्ञान है। विज्ञान ने मनुष्य को साधन सम्पन्न बनाया है। अन्य प्राणी इस जानकारी से रहित हैं, इसलिए वे निकटवर्ती आहार को उपलब्ध करने में ही अपनी क्षमता समाप्त कर लेते हैं। उन्हें विज्ञान नहीं मिला। विज्ञान केवल मनुष्य की विशेष उपलब्धि है। आग जलाना, कृषि, पशुपालन, वास्तुशिल्प, भाषा, चिकित्सा आदि जानकारियां उसने प्राप्त की हैं और उनके सहारे स्वयं को साधन सम्पन्न बनाना है। कभी विज्ञान की परिधि छोटी थी और उसके सहारे जीवनोपयोगी वस्तुओं तक का ही उत्पादन एवं प्रस्तुतीकरण होता था, पर अब बात बहुत आगे बढ़ गई है और प्रकृति के अनेकानेक रहस्य खोज निकाले हैं। लेकिन इससे आगे बढ़कर दूसरों के साधन छीनने वाले, उन्हें असमर्थ बनाने वाले प्राण घातक अस्त्र-शस्त्र भी बनने लगे हैं। जिस विज्ञान से सुख साधनों की वृद्धि का स्वप्न देखा जाता है वही यदि विनाश या पतन की सामग्री प्रस्तुत करने लगे तो आश्चर्य और असमंजस की बात है। आज ज्ञान और विज्ञान दोनों ही अपनी प्रौढ़ावस्था में हैं। विडम्बना एक ही है कि वे सीधी राह चलने की अपेक्षा उल्टी दिशा अपना रहे हैं और एकदूसरे का सहयोग न करके विरोध का रुख अपनाए हुए हैं और तरह-तरह के दाव-पेचों का आविष्कार कर रहे हैं। इन गतिविधियों से वह धारा अवरुद्ध हो गई, जो अब तक मनुष्य को समर्थ और सुखी बनाती रही है।

पर्यावरण और भारतीय दृष्टि

❑ बजरंगी सिंह

यदि हम आज पर्यावरण को भारतीय दृष्टि से समझने और जानने की कोशिश करें तो ज्ञात होता है कि इसके साथ हमारी हजारों वर्षों की पुरानी मित्रता है। उसके अनुसार पर्यावरण का क्षेत्र मात्र प्राकृतिक पर्यावरण का ही नहीं है। हमारे यहां प्रकृति को बहुत व्यापक अर्थ में लिया गया है। संसार की कोई ऐसी चीज नहीं है जो प्रकृति से अलग हो। मनुष्य पर्यावरण में ही पैदा होता है, पर्यावरण में ही जीता है और पर्यावरण में ही लीन हो जाता है। पर्यावरण की इतनी व्यापक परिभाषा है। आज उसे चुनौती नहीं दी जा सकती क्योंकि पर्यावरण बहुआयामी है।

हमारी शास्त्रीय परम्परा पर्यावरणीय विषमता का कारण मनुष्य को ही मानती है। मनुष्य अपनी सद और असद इच्छाओं द्वारा और सद और असद कर्मों द्वारा पर्यावरण को दूषित करता है और इसके स्तरों में असंतुलन व विषमता पैदा करता है और फिर सामूहिक रूप से उसके विषम परिणामों को भोगता है। इन मूल तत्वों को ध्यान रखते हुए मनुष्य को सबसे पहले अपने पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक पर्यावरण को दूषित करने और उसका संतुलन बिगाड़ने से बचना चाहिए। यही धर्म का वास्तविक अर्थ है। 'धर्मो रक्षित रक्षित:' यानि आप धर्म की रक्षा करें, धर्म आपकी रक्षा करेगा। इसका अर्थ यही है कि हम पर्यावरण के इन विभिन्न स्तरों को परिशुद्ध बनाये रखें और उनमें आपस में एक सामंजस्य बना रहे। पर्यावरण के स्तरों में जब सामंजस्य टूटता है या विषमता पैदा होती है तो उसका प्रभाव मनुष्य पर सीधा पड़ता है।

पर्यावरण के विषय में दो परस्पर भिन्न दृष्टियां हैं, जो एक दूसरे से सर्वथा विपरीत हैं। एक दृष्टि पश्चिम की है, जिसमें माना जाता है कि पर्यावरण मनुष्य का शत्रु है। वह उनके अस्तित्व और विकास के लिए घातक है। इसलिए उसके प्रत्येक स्तर को समझकर उसको अपने वश में करना है ताकि मनुष्य अपने पर्यावरण से अधिक से अधिक दीर्घ समय तक अनुकूलता प्राप्त कर जीवित रह सके। इसके विपरीत भारतीय दृष्टि यह है कि पर्यावरण किसी भी स्तर पर हमारा शत्रु नहीं है बल्कि उससे तमाम स्तरों पर प्राणी और पदार्थों की पारस्परिक निर्भरता का एक सामंजस्यपूर्ण संसार है और उसके साथ संतुलन बनाये रखने से ही मनुष्य सुखी, शांत और संतुष्ट रह सकता है। इसके लिए पर्यावरण का शोषण, दमन और दुरुपभोग करने की अपेक्षा उससे सहयोग और उसका उपयोग करना ही भारतीय दृष्टि से पर्यावरण के साथ सहज और स्वाभाविक संबंध की स्थापना करता है।

पर्यावरण को प्रदूषण से बचाएं, पर्यावरण आप की रक्षा करेगा। यदि उसे नहीं बचाया गया तो मनुष्य का पोषण मर जायेगा। यह मानव जाति के लिए जीवन-मरण का प्रश्न है इसलिए इसको सुलझाने के लिए प्रकृति के साथ संतुलन और सामंजस्य बनाये रखने की जरूरत है। यही मनुष्य का धर्म है क्योंकि जो स्वाभाविक होता है वही धर्म है। जो अस्वाभाविक होता है वह धर्म नहीं है। जिस वस्तु का जो धर्म है उसके साथ में संतुलन ही हमारे शरीर को बनाएं हुए हैं, उसे नहीं बिगाड़ें। उसको बिगाडने की जो दृष्टि है वह है सामाजिक प्रदूषण जो आज की अर्थव्यवस्था है, उसे हम भोग प्रधान अर्थव्यवस्था की कह सकते हैं। यह सारी चीजों का संतुलन बिगाड़ती हैं इसलिए पर्यावरण के प्रति मानवीय की दृष्टि को शोषण रहित बनाना है।

भारतवर्ष में हजारों वर्षों से यह मान्यता रही है कि प्रकृति के संतुलन को कायम रखा जाये लेकिन विज्ञान में जिस ढंग से प्रयोग हो रहा है। उसमें ऐसा लगता है कि सत्ता के लोभ से, धन के लोभ से ग्रस्त सभ्यता उसे रहने नहीं देती। वह हर हालत में प्रकृति संतुलन को तोड़ना चाहती है। क्यों तोड़ना चाहती है? मुझे लगता है उसमें एक दृष्टि दोष है। पूर्व की दृष्टि यह रही है कि प्रकृति समझ कर उसके अनुसार व्यवहार करना चाहिए। यह सही है कि प्रकृति किसी का लिहाज नहीं करती और उसके नियम समझना विज्ञान के जरिये ही हो सकता है। लेकिन विज्ञान के द्वारा प्रकृति के नियम समझकर उसके साथ सहयोग करना है। उसे आदर देना है।

हमारी परम्परा में हमेशा पर्यावरण का पूजन किया जाता है। पर्यावरण की चीजों में देवत्व माना गया है और इसलिए जीवित वृक्षों को काटना पाप समझते हैं। यही नहीं हमारे यहां प्रकृति पूजा सनातन से चली आ रही है। स्नान के बाद लोग वृक्ष पर जल चढ़ाते हैं। यह परम्परा आज भी जारी है। ऐसा शायद इसलिए होता रहा है कि वृक्ष हरे-भरे रहेंगे और सुरक्षित रहेंगे तो पर्यावरण भी शुद्ध और सुरक्षित रहेगा। जब पर्यावरण शुद्ध होगा तो व्यक्ति भी स्वस्थ्य होगा। इस आस्था के पीछे एक धार्मिक भावना सदियों से काम करती आ रही है। विज्ञान भी यह मानता है कि यदि प्रकृति के साथ एक संतुलन और सामंजस्य है तो वह स्वस्थ्य रहेगा। शोषण नहीं होगा और उसके माध्यम से पोषण भी होगा और पारस्परिकता भी बढ़ेगी। विज्ञान मानता है प्राकृतिक शक्तियों के साथ मनुष्य का संबंध पुरातन है। मनुष्य भी एक प्रकृति प्राणी है। उसका मन और बुद्धि भी प्रकृति का ही एक सूक्ष्म हिस्सा है। प्रकृति के जितने भी भौतिक तत्व हैं, हवा, पानी, प्रकाश तथा मिट्टी सब के साथ हमारा एक संतुलन होना चाहिए। उसी तरह जितने प्राणी हैं, उनके साथ भी हमारा संतुलन बना रहना चाहिए क्योंकि वे सभी प्रकृति का एक हिस्सा हैं।

आज यह वक्त की मांग है कि हम परिवेश की रक्षा करें। पर्यावरण को प्रदूषण से बचाएं, पर्यावरण आप की रक्षा करेगा। यदि उसे नहीं बचाया गया तो मनुष्य का पोषण मर जायेगा। यह मानव जाति के लिए जीवन-मरण का प्रश्न है इसलिए इसको सुलझाने के लिए प्रकृति के साथ संतुलन और सामंजस्य बनाये रखने की जरूरत है। यही मनुष्य का धर्म है क्योंकि जो स्वाभाविक होता है वही धर्म है। जो अस्वाभाविक होता है वह धर्म नहीं है। सम्प्रदाय आदि धर्म नहीं है। जैन दर्शन में लिखा है कि जो वस्तु का स्वभाव है वही धर्म है जिस वस्तु का जो धर्म है उसके साथ में संतुलन ही हमारे शरीर को बनाएं हुए हैं, उसे नहीं बिगाड़ें। उसको बिगाडने की जो दृष्टि है वह है सामाजिक प्रदूषण जो आज की अर्थव्यवस्था है, उसे हम भोग प्रधान अर्थव्यवस्था की कह सकते हैं। यह सारी चीजों का संतुलन बिगाड़ती हैं इसलिए पर्यावरण के प्रति मानवीय दृष्टि को शोषण रहित बनाना है। ❑

(महामंत्री, अ.भा. मा. शिक्षक महासंघ)

पर्यावरण की शिक्षा अर्थात शिक्षा का पर्यावरण

पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ खोजें तो पायेंगे एक ऐसा आवरण जो हमारे चारों ओर है। कहने का अर्थ है पर्यावरण अपने अर्थ से ही व्यापकता और विस्तार को अपने में समाहित किए है। व्यापकता विषय की ओर विस्तार चेतना का, चेतना को संस्कारित करने का सम्बन्ध शिक्षा से है। वर्तमान में शिक्षा का पर्यावरण भी दूषित है। मूल्यों से दूर होकर शिक्षा मात्र अर्थोपार्जन का माध्यम या आधार बन चुकी है। व्यक्तित्व के समग्र विकास की अवधारणा से शिक्षा कोसों दूर हो गयी है। परिवार के स्तर पर जो शिक्षा मिला करती थी वह आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के जाल में उलझ गई है। विद्यालयों और महाविद्यालयों की शिक्षा अर्थोपार्जन के शिकंजे में जकड़ गई है। मनुष्य वस्तु होकर रह गया है।

❑ डॉ. चन्द्र शेखर कच्छावा

पर्यावरण की चिन्ता आज प्रत्येक अनुशासन, मनीषी एवं वैज्ञानिकों के चिन्तन का विषय है। पर्यावरण को अधिकांशत: पेड़ लगाने, हरियाली का विस्तार करने, जल या वायु की शुद्धि तक ही सीमित कर दिया गया है। पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ खोजें तो पायेंगे एक ऐसा आवरण जो हमारे चारों ओर है। कहने का अर्थ है पर्यावरण अपने अर्थ से ही व्यापकता और विस्तार को अपने में समाहित किए है। व्यापकता विषय की ओर विस्तार चेतना का, चेतना को संस्कारित करने का सम्बन्ध शिक्षा से है। वर्तमान में शिक्षा का पर्यावरण भी दूषित है। मूल्यों से दूर होकर शिक्षा मात्र अर्थोपार्जन का माध्यम या आधार बन चुकी है। व्यक्तित्व के समग्र विकास की अवधारणा से शिक्षा कोसों दूर हो गयी है। परिवार के स्तर पर जो शिक्षा मिला करती थी वह आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के जाल में उलझ गई है। विद्यालयों और महाविद्यालयों की शिक्षा अर्थोपार्जन के शिकंजे में जकड़ गई है। मनुष्य वस्तु होकर रह गया है। ऐसे में पर्यावरण का विषय महत्वपूर्ण व आवश्यक हो गया है ताकि समग्र परिवेश में सुधार हो सके। जीवन मूल्यों से लेकर राष्ट्रीय चिन्तन तक सकारात्मक दृष्टिकोण पनपे। ज्ञान और आचरण में सामंजस्य स्थापित हो। सही अर्थों में शिक्षा आकार ले सके। पर्यावरण इस तरह मनुष्य से लेकर प्रकृति तक जाता है। इस माने में वर्तमान को अधिक सचेत, अधिक सतर्क, अधिक सकारात्मक और अधिक प्रयत्नशील होना होगा। इसके लिए शिक्षा ही महत्त्वपूर्ण उपक्रम रहेगा। पूर्व से लेकर पश्चिम तक के मनीषी, चाहे हमारे देश के ऋषि हों, अथवा पश्चिम के प्लेटो, हेगल, वर्गसां, स्पेन्सर जैसे चिन्तक सभी ने इस ओर ध्यान देकर गम्भीर शोध किए हैं।

निर्वनीकरण, औद्योगिकीकरण, भूगर्भ दोहन, भूक्षरण, आधुनिकता की अन्धी दौड़ ने मनुष्य और प्रकृति के बीच गहरी खाई बना दी है। स्वयं के पैदा किए प्रदूषण का शिकार होकर जीवन में असंतुलन पैदा कर दिया है। इससे जहाँ रोग बढ़े हैं वहीं पर्यावरण विघटन भी हुआ है। आवश्यकता अब भी सतर्क और सचेत होने की है

अन्यथा आने वाली पीढ़ियां हमें क्षमा नहीं करेंगी। शिक्षा पर्यावरण चेतना जागरण का सार्थक माध्यम हो सकती है। आवश्यकता सही दृष्टि और प्रयत्न की है। शिक्षा के सभी स्तरों पर सही सोच की आवश्यकता है। प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और महाविद्यालयी शिक्षा के स्तर पर कार्य किया जाना चाहिए।

प्राथमिक स्तर पर जहाँ केवल जिज्ञासा, कौतुहल और ऊर्जा होती है, वहाँ पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश के स्वरूप से जुड़े विषय पाठ्यक्रम में जोड़ने होंगे। माध्यमिक शिक्षा जहाँ प्रयत्न को आकार देती है, इस स्तर पर जीव जगत और वनस्पति के अन्योन्याश्रित सम्बन्धों को समझाने का प्रयत्न आवश्यक है। अपने आसपास को स्वच्छ, हरित और संतुलित रखने के विषय पाठ्यक्रम में जोड़ने चाहिए। यहां यह आवश्यक है कि जीवन पद्धति से पर्यावरण विषय को जोड़ा जाए। मनुष्यों की स्वार्थ की वृत्ति के कारण प्रकृति का चक्र बिगड़ रहा है। यही कारण है कि कभी सुनामी, तो कभी अलनीनो, तो कभी लातूर की घटनाएं हमें झेलनी पड़ रही है। बैक्टीरिया, वायरस, अमीबा जैसे एक कोशीय जीवों से लेकर मनुष्यों तक तथा एल्गी से लेकर पेड़ पौधों तक की अपनी महत्ता है। इस तथ्य को गहराई से समझने की आवश्यकता है। माध्यमिक स्तर तक जीवन पद्धति से जुड़ी शिक्षा की आवश्यकता है वहीं महाविद्यालय और उससे इतर शोध को पर्यावरण से जोड़ना होगा। अभी तक हम प्रकृति का दोहन केवल मनुष्य की सुविधा और भोग हेतु कर रहे थे और इस क्षेत्र की उन्नति को आधुनिकता और प्रगति कह रहे थे। इस सोच से प्रकृति, जनसंख्या असंतुलन और वैज्ञानिक शोध के बीच संतुलन का रिश्ता कायम करें तो ही मानवता त्राण पाएगी।

साहित्य हो या समाज विज्ञान, मानविकी हो या विज्ञान, सभी को सामूहिक प्रयत्न कर दिशा देनी होगी। शिक्षा के स्तर पर पाठ्यक्रम को सुसंस्कारिता से जोड़ना होगा। श्रमशीलता, सुव्यवस्था, मितव्ययता, उदार सहकारिता जैसे मूल्यों को शिक्षा के साथ जोड़कर हम पर्यावरण की शिक्षा को सही दिशा दे सकेंगे और शिक्षा के पर्यावरण को भी दुरुस्त कर सकेंगे। प्रयत्नों को सामूहिकता देनी होगी। यह शिक्षा से ही सम्भव है।

कविवर जयशंकर प्रसाद की पंक्तियां यहां समीचीन है –

'शक्ति के विद्युतकरण जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं हो निरूपाय
समन्वय उनका करे समस्त
विजयनी मानवता हो जाए।' ❑

(एसोसियेट प्रोफेसर राजनीतिक विज्ञान)

बस्ते का बोझ कम करने की कवायद

देश की राजधानी से शुरू हुई कोई भी पहल पूरे देश के लिए अनुकरणीय होनी चाहिए इसलिए उसकी चर्चा जरूरी है। बात यदि नौनिहालों के शैक्षिक और सर्वांगीण विकास की हो रही हो तो उसे निश्चित ही प्रकाश में आना चाहिए। क्योंकि कम या ज्यादा यह स्थिति कमोबेश पूरे देश के बच्चों की समस्या होती है। इस क्रम में बच्चों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के मद्देनजर शिक्षा निदेशालय ने दिल्ली के स्कूली बच्चों की पीठ पर लदे भारी-भरकम बस्ते के बोझ के प्रति चिंता जताते हुए इसे कम करने की दिशा में सराहनीय पहल की है। निदेशालय ने राजधानी के सरकारी, सरकारी सहायता प्राप्त और निजी स्कूलों के प्रबंधकों, कर्ता-धर्ताओं और प्रधानाचार्यों के लिए तय दिशानिर्देशों के तहत आदेश जारी किया है कि बच्चों के बस्ते को यथासंभव हल्का बनाया जाए। कारण, पीठ पर लदे इस बोझ के कारण बच्चों के शारीरिक स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ रहा है। यह एक और अच्छी बात है कि बस्ते के संबंध में जारी दिशानिर्देशों के तहत केवल कापी-किताबों की ही संख्या पर ध्यान नहीं दिया गया है बल्कि बच्चों का बस्ता बाल मैत्रीय यानी कम वजनी हो और इसे किस तरीके से टांगा जाए, इस पर भी ध्यान दिलाया गया है।

वास्तव में सुबह-सुबह जब स्कूली बच्चे पीठ पर भारी- भरकम बस्ते लादे स्कूल बस का इंतजार कर रहे होते हैं या बस छूटने की हड़बड़ी में बस्ते लादे भागते नजर आते हैं तो अपनी शिक्षा व्यवस्था पर बहुत क्षोभ होता है। अनेक बच्चे तो बस्ते के इस भय से ही स्कूल जाने से कतराते हैं। यह भय उन्हें शारीरिक और मानसिक दोनों रूपों में परेशान करता है। एक ओर उनकी पीठ और कंधे थकते हैं तो दूसरी ओर मानसिक परेशानी इसकी कि यदि पहले दिन रटाया गया सबक याद नहीं रहा तो स्कूल में शिक्षक की डांट सुननी पड़ेगी। डॉक्टरों का भी मानना है कि बच्चे की पीठ पर लदा भार यदि उसके अपने भार से 15 प्रतिशत अधिक होता है तो रीढ़ की हड्डी और कंधे पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। दरअसल व्यावहारिक ज्ञान से बेखबर हमारी प्राथमिक शिक्षा की मूल परिभाषा मोटी-मोटी किताबें और कापियां मान ली गई हैं जिन्हें रटना-रटाना हमारे नौनिहालों और अध्यापकों की नियति है। बेशक पिछले साल का रटा हुआ सबक अगले साल बच्चे को याद हो या न हो।

कापी-किताबों के रूप में बच्चों की पीठ पर लदे इस भार के बारे में समय-समय पर चिंता जाहिर होती रही है लेकिन कभी भी इस पर यथोचित ध्यान नहीं दिया गया। यशपाल कमेटी द्वारा 1990 में बस्ते के बोझ को कम करने के लिए जरूरी सुझाव दिए गए थे लेकिन आज तक उन पर अमल नहीं हो पाया है। ऐसे में कितना यकीन किया जाए कि दिल्ली के स्कूलों में उक्त दिशा निर्देशों का पालन होगा। लेकिन प्रयास जारी रहने चाहिए। कभी तो सुबह होगी।

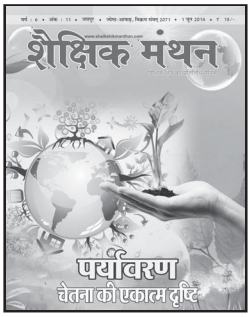

आज की शिक्षा पद्धति अपने मूल उद्देश्य को ही पूरा नहीं कर पाती है। इसका मुख्य कारण है कि आज की शिक्षा भौतिकता पर केन्द्रित है, जबकि शिक्षा को मूल रूप से उस आत्मिक अर्थात चेतना के स्तर पर केन्द्रित होना चाहिए जो कि भौतिक जगत की भी सफल वाहक होती है। और इसका कारण यह है कि अभी तक शिक्षा में छात्रों की चेतना को जाग्रत कर उन्हें सर्वज्ञ और सर्वसमर्थ बनाने की सनातन पारम्परिक ध्यान-योग विद्या को अंगीकार नहीं किया गया है।

विशिष्ट गुणों वाली शिक्षा की आवश्यकता

❑ रणजीत सिंह

आज की स्कूली शिक्षा का ज्यादातर जोर सभी छात्रों को एक ही तरह की शिक्षा, एक ही तरह के पाठ्यक्रम में समेटने का है। यह बायोलॉजीकल तथ्य है कि अलग-अलग विषयों में पकड़ कमजोर या मजबूत होती है। चूंकि सारे छात्रों को एक ही पाठ्यक्रम पढ़ना पड़ता है, इसलिए कोई किसी विषय में बाजी मार लेता है तो किसी में पिछड़ जाता है। और यह तो तब होता है, जब उनके पास होने या अधिक अंक लाने के पीछे ट्यूशन, कोचिंग और अभिभावकों का जोर रहता है। छात्रों की कुशाग्रता पाठ्यक्रम की तोतारटन्त में जाया होती है। यही कारण है कि इस शिक्षा तंत्र में पढ़े-लिखे बहुत कम छात्र ही आगे चलकर मानव समाज में अपनी अद्वितीय या विशिष्ट विद्वता स्थापित कर पाते हैं।

होना यह चाहिए कि शिक्षा पद्धति या प्रणाली के साथ-साथ ऐसी तकनीकें अपनाई जानी चाहिए, जो छात्रों की क्षमता और विशिष्ट गुण के अनुसार उनको विकसित करने में सहायक हों। लेकिन अभी क्या स्थिति है? वर्तमान शिक्षा प्रणाली छात्रों की मानसिक स्थिति और स्तर समझने तथा उसका तदनुरूप विकास करने में अक्षम है। यह बालकों के भीतर छिपी कल्पनाशीलता, सृजनशीलता के पनपने, निखरने का स्वाध्यायी अवसर प्रदान नहीं करती है। और उसके मस्तिष्क की सम्पूर्ण क्षमता दूसरों के बनाए शिक्षा तंत्र में उलझ कर रह जाती है। होना यह चाहिए कि जिस छात्र की जिस विषय में अधिक रूचि और पकड़ हो, उसे महज दूसरे विषयों की कमजोरी के कारण असफल न घोषित कर दिया जाए। ऐसी स्थिति छात्रों की योग्यता के विकास में बाधा उत्पन्न करती है । ऐसे में उक्त छात्र में दूसरे छात्र की तुलना में हीन भावना पनपने के साथ-साथ वह मनपसंद या जिस विषय में अपनी अद्भुत क्षमता प्रदर्शित कर सकता है, उससे भी वंचित रह जाता है । संगीत, नृत्य, ललित कला, पर्यावरण, गृह विज्ञान, पाक कला, वस्त्र विज्ञान, भौगोलिक ज्ञान, ग्रामीण विकास ऐसे कई क्षेत्र हैं, जिनमें बहुत से छात्रों की पकड़ और रुझान होने के बावजूद अभिभावकों, शिक्षा तंत्र और समाज में स्थापित मुख्यधारा का कॅरिअर न मानने के कारण हतोत्साहित या अपेक्षित किया जाता है और वे न चाहते हुए भी

वर्तमान शिक्षा प्रणाली छात्रों की मानसिक स्थिति और स्तर समझने तथा उसका मदानुरूप विकास करने में अक्षम है। यह बालकों के भीतर छिपी कल्पनाशीलता, सृजनशीलता को पनपने , निखरने का स्वाध्यायी अवसर प्रदान नहीं करती है।

बने-बनाए ब्राइट कॅरिअर के चुनिंदा क्षेत्रों में ही अपने को उलझा लेते हैं। आज के शिक्षा के मौजूदा ढांचे में सुधार या परिवर्तन की आवश्यकता है। एकांगी विकास की वाहक वर्तमान शिक्षा प्रणाली छात्रों के मस्तिष्क की सम्पूर्ण क्षमता को नहीं जगा पाती है। इसलिए वह न तो छात्र का ही समग्र विकास कर पाती है और न ही समाज का। आज की शिक्षा पद्धति अपने मूल उद्देश्य को ही पूरा नहीं कर पाती है। इसका मुख्य कारण है कि आज की शिक्षा भौतिकता पर केन्द्रित है, जबकि शिक्षा को मूल रूप से उस आत्मिक अर्थात चेतना के स्तर पर केन्द्रित होना चाहिए जो कि भौतिक जगत की भी सफल वाहक होती है। और इसका कारण यह है कि अभी तक शिक्षा में छात्रों की चेतना को जाग्रत कर उन्हें सर्वज्ञ और सर्वसमर्थ बनाने की सनातन पारम्परिक ध्यान-योग विद्या को अंगीकार नहीं किया गया है।

जब तक शिक्षा में वेद विज्ञान को सम्मिलित नहीं किया जाएगा तब तक सारे विश्व सहित भारत की शिक्षा व्यवस्था और उसके परिणामों का यही हाल रहेगा। इसके लिए लोग और सरकारें सोचती हैं कि बहुत बड़े-बड़े परिवर्तन करने होंगे, व्यवस्थाएं बनानी होगी, जबकि ऐसा कुछ नहीं है। अभी छात्रों, शिक्षकों, अभिभावकों के ऊपर उनके पाठ्यक्रम की जो जिम्मेदारियां हैं, उनके मुकाबले वेद-विद्या को सिद्धान्त: और व्यवहारिक रूप में अंगीकार करना कहीं अधिक सरल और सुगम है। इसके लिए सभी विद्यालय और शिक्षण संस्थान अपने यहां यदि वेद-विज्ञान के सबसे सरल और व्यावहारिक ज्ञान भावातीत ध्यान के एक पीरियड का नियमित अभ्यास अनिवार्य कर दें तो विद्यार्थियों की चेतना और बुद्धि सर्वज्ञता और सार्वसमर्थता में जागृत रहने की ओर स्वत: अप्रसारित होगी कारण कि भावातीत ध्यान के नियमित अभ्यास से उनकी चेतना में प्राकृतिक साम्यता की वह अनुकम्पा बनी रहती है, जो सारी सृष्टि का सुचारू संचालन करती है। ❑

शिक्षक के बगैर शिक्षा

सरकारी स्कूलों में अध्यापकों की कमी को लेकर समय-समय पर तथ्य आते रहे हैं। अब सीबीएसई यानी केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने अपने एक सर्वेक्षण के हवाले से बताया है कि देश भर के स्कूलों में करीब बारह लाख शिक्षकों की कमी है। इस समस्या से पार पाने के लिए सीबीएसई ने पढ़ाई-लिखाई में तकनीकी संसाधनों को बढ़ावा देना शुरू किया है। मसलन, दिल्ली के कुछ गरीब इलाकों में बच्चों को टैबलेट यानी पढ़ाई-लिखाई को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया कंप्यूटर वितरित किया गया था। सीबीएसई का अनुभव है कि तकनीकी संसाधनों के इस्तेमाल से बच्चों को किताबों की तुलना में टैबलेट के जरिए सीखने में ज्यादा मदद मिली है।

मगर इस तरह बच्चों को स्कूल से दूर करके या प्रशिक्षित शिक्षकों की इतनी भारी कमी की सूरत में सार्वभौम शिक्षा अधिनियम का मकसद कैसे हासिल हो सकेगा। संबंधित अधिनियम बना तो उसमें दो खास लक्ष्य निर्धारित किए गए। एक, स्कूलों के बुनियादी ढांचे यानी भवन, पेयजल, शौचालय आदि सुविधाओं से संबंधित, और दूसरे, शैक्षिक गुणवत्ता को लेकर, जिसके तहत विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात को सुधारने का भरोसा दिलाया गया। इन दोनों कसौटियों पर खरे उतरना तो दूर, हालत पहले से भी खराब दिखते हैं। तमाम राज्य सरकारें अध्यापकों के रिक्त पदों को भरने के बजाय अनुबंध आधार पर शिक्षा-मित्रों के जरिए स्कूली शिक्षा की खानापूर्ति के रास्ते पर चल रही हैं। पढ़ाई का मतलब सिर्फ अक्षर ज्ञान या अपने दैनिक कामकाज भर की लिखत-पढ़त कर लेना नहीं होता। एक तरफ निजी स्कूलों में आधुनिक संसाधनों के इस्तेमाल और विद्यार्थियों को नई वैश्विक जरूरतों के मुताबिक तैयार करने के दावों के सहारे पढ़ाई-लिखाई दिनों दिन और महंगी होती जा रही है, दूसरी तरफ काफी बड़ी तादाद उन बच्चों की है जिनके माता-पिता पढ़ाई-लिखाई पर खर्च कर सकने में अक्षम हैं। निजी स्कूलों पर दबाव बनाया गया कि वे आर्थिक रूप से कमजोर तबके के बच्चों के लिए पच्चीस प्रतिशत सीटें आरक्षित रखें, मगर यह नियम सिर्फ उन्हीं पर लागू होता है जिन्होंने बाजार भाव से कम दर पर सरकार से जमीन हासिल की है। लिहाजा, इस व्यवस्था से भी गरीब परिवारों के बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दिला पाने का मकसद पूरा नहीं हो पा रहा है।

शिक्षा अधिकार कानून लागू हुआ तो दावा किया गया था कि अगले तीन सालों में शिक्षा संबंधी आधारभूत ढांचे की शर्त पूरी कर ली जाएगी। निर्धारित अवधि एक साल पहले बीत चुकी है, मगर आधारभूत ढांचे के मामले में स्कूलों की दशा पहले से बदतर ही हुई है। फिर, किसी भी स्कूल में विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात सही नहीं है। ग्रामीण इलाकों के बहुत सारे प्राथमिक विद्यालयों में सभी कक्षाओं के विद्यार्थियों को पढ़ाने की जिम्मेदारी एक या दो अध्यापकों पर है। सीबीएसई ने तो प्रायोगिक तौर पर तकनीकी संसाधनों की मदद से विद्यार्थियों को पढ़ाने-लिखाने का तरीका निकाल लिया है। मगर शिक्षा के मद में पैसा खर्च करने से बचती रहीं राज्य सरकारों के स्कूलों के आसरे पढ़-लिख रहे दूरदराज के विद्यार्थियों तक तो ऐसी सुविधाओं की पहुंच भी नहीं है। फिर, सवाल यह भी है कि इस तरह घर बैठे पढ़ाई करके कुछ समझ विकसित कर लेने वाले बच्चे महंगे निजी स्कूलों से निकले बच्चों के साथ कहां खड़े हो सकेंगे। शिक्षा अधिकार कानून अगर शिक्षा में श्रेणीकरण और भेदभाव को मिटा नहीं पा रहा तो फिर उसकी प्रासंगिकता क्या है। स्कूलों की बदहाली की तरफ पीठ किए रह कर सरकारें एक तरह से बेहतर अवसरों पर बाड़ लगाने का ही काम कर रही हैं। ❑

स्कूली शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की जरूरत

❑ पंकज चतुर्वेदी

शिक्षा व्यवस्था अराजकता और अंधेरगर्दी के ऐसे गलियारे में खड़ी है जहां से एक अच्छा नागरिक बनने की उम्मीद करना बेमानी ही होगा। ऐसे में एक ही विकल्प शेष है- सभी को एक समान स्कूली शिक्षा। यह सर्वविदित है कि प्राथमिक शिक्षा किसी बच्चे के भविष्य की बुनियाद है। हमारे देश में प्राथमिक स्तर पर ही शिक्षा लोगों का भविष्य तय कर रही है। एक तरफ कंप्यूटर, एसी और खिलौनों से सज्जित स्कूल हैं, तो दूसरी ओर ब्लैकबोर्ड, शौचालय जैसी मूलभूत जरूरत को तरसते बच्चे। साफजाहिर होता है कि शिक्षा व्यवस्था अराजकता और अंधेरगर्दी के ऐसे गलियारे में खड़ी है जहां से एक अच्छा नागरिक बनने की उम्मीद करना बेमानी ही होगा। ऐसे में एक ही विकल्प शेष है- सभी को एक समान स्कूली शिक्षा।

दिल्ली-एनसीआर में नर्सरी स्कूलों में एडमिशन को लेकर बवाल हो रहा है। हालात इतने बदतर हैं कि तीन साल के बच्चे को स्कूल में दाखिल करवाने के लिए कई महीनों से हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट में मुकदमें चल रहे हैं और न तो पालक और न ही स्कूल इससे संतुष्ट हैं। नर्सरी का दाखिला आईआईटी की फीस से भी महंगा हो गया है। कुल मिलाकर देखें तो देश में स्कूली शिक्षा पर सरकार और समाज बेशुमार खर्च कर रहे हैं, फिर भी कोई संतुष्ट नहीं है। देश में आज भी प्राइमरी स्तर के 75 प्रतिशत स्कूल सरकारी हैं और वहां पढ़ाई की गुणवत्ता इतनी खराब है कि 45 प्रतिशत से ज्यादा बच्चे कक्षा पांच के आगे पढ़ने के लायक नहीं होते हैं। राजधानी से सटे गाजियाबाद के कई नामचीन स्कूलों में बढ़ी फीस का झंझट अब थाना-पुलिस तक पहुंच गया है। स्कूल वाले बच्चों को प्रताड़ित कर रहे हैं, तो अभिभावक पुलिस के पास गुहार लगा रहे हैं। माहौल ऐसा हो गया है कि बच्चों के मन में स्कूल या शिक्षक के प्रति कोई श्रद्धा नहीं रह गई है। वहीं स्कूल वालों की बच्चों के प्रति न तो संवेदना रह गई है और न ही सहानुभूति। शिक्षा का व्यापारीकरण कितना खतरनाक होगा, इसका अभी किसी को अंदाजा नहीं है। लेकिन मौजूदा पीढ़ी जब संवेदनहीन हो कर अपने ज्ञान को महज पैसा बनाने की मशीन बना कर इस्तेमाल करना शुरू करेगी, तब समाज और सरकार को इस भूल का एहसास होगा। साफ जाहिर होता है कि शिक्षा व्यवस्था अराजकता और अंधेरगर्दी के ऐसे गलियारे में खड़ी है जहां से एक अच्छा नागरिक बनने की उम्मीद करना बेमानी ही होगा। ऐसे में एक ही विकल्प शेष है- सभी को एक समान स्कूली शिक्षा।

यह सर्वविदित है कि प्राथमिक शिक्षा किसी बच्चे के भविष्य की बुनियाद है। हमारे देश में प्राथमिक स्तर पर ही शिक्षा लोगों का भविष्य तय कर रही है। एक तरफ कंप्यूटर, एसी और खिलौनों से सज्जित स्कूल हैं, तो दूसरी ओर ब्लैकबोर्ड, शौचालय जैसी मूलभूत जरूरत को तरसते बच्चे। स्थिति यह है कि दो-ढाई साल के बच्चों का प्री- स्कूल प्रवेश चुनाव लड़ने के बराबर कठिन माना जाता हैं। यदि जुगाड़ लगा कर कोई मध्यम वर्ग का बच्चा इन बड़े स्कूलों में पहुंच भी जाए तो वहां के ढकोसले-चोंचले झेलना उसके बूते के बाहर होता है। बच्चे के जन्मदिन पर स्कूल के सभी बच्चों में कुछ वितरित करना या 'ट्रीट' देना, सालाना जलसों के लिए स्पेशल ड्रेस बनवाना, साल भर में एक-दो पिकनिक या टूर- ये ऐसे व्यय हैं जिन पर हजारों का खर्च यूं ही हो जाता है। फिर स्कूल की किताबें, वर्दी, जूते आदि भी स्कूल द्वारा तयशुदा दुकानों से खरीदने पर स्कूल संचालकों के वारे-न्यारे होते रहते हैं। कोई 16 साल पहले केंद्र सरकार के कर्मचारियों के पांचवें वेतन आयोग के समय दिल्ली सरकार ने फीस बढ़ोतरी के मुद्दे पर मानव संसाधन विकास मंत्रालय से अवकाश प्राप्त सचिव जेवी राघवन की अध्यक्षता में नौ सदस्यों की एक कमेटी गठित की थी। इस समिति ने दिल्ली स्कूल एक्ट 1973 में संशोधन की सिफारिश की थी। समिति का सुझाव था कि पब्लिक स्कूलों को बगैर लाभ-हानि के संचालित किया जाना चाहिए। कमेटी ने पाया था कि कई स्कूल प्रबंधन छात्रों से उगाही फीस का इस्तेमाल अपने दूसरे व्यवसायों में कर रहे हैं। राघवन कमेटी ने ऐसे स्कूलों के प्रबंधन के खिलाफ कड़ी कार्रवाई करने की अनुशंसा भी की थी। कमेटी ने सुझाव दिया था कि छात्रों से वसूले धन का इस्तेमाल केवल छात्रों और शिक्षकों की बेहतरी पर ही किया जाए। उसके बाद पांच साल पहले छठे वेतन आयोग के बाद भी सरकार ने बंसल कमेटी गठित की, जिसकी सिफारिशें राघवन कमेटी की ही तरह थीं।

ये रिपोर्ट बानगी हैं कि स्कूली-शिक्षा अब एक नियोजित धंधा बन चुकी है। बड़े पूंजीपति, औद्योगिक घराने, माफिया, राजनेता अपने धन को काला-गोरा करने के लिए स्कूल खोल रहे हैं।

वहां किताबों, वर्दी की खरीद, मौज-मस्ती की पिकनिक या हॉबी क्लास, सब मुनाफे का व्यापार बन चुका है। इसके बावजूद इन अनियमितताओं की अनदेखी केवल इसलिए है क्योंकि इस खेल में नेताओं की सीधी साझेदारी है। इसकी सबसे बड़ी वजह यह है कि शिक्षा का सरकारी सिस्टम जैसे जाम हो गया है। निर्धारित पाठ्यक्रम की पुस्तकें मांग के अनुसार उपलब्ध कराने में एनसीईआरटी सरीखी सरकारी संस्थाएं बुरी तरह असफल रही हैं। जबकि प्राइवेट या पब्लिक स्कूल अपनी मनमानी किताबें छपवा कर कोर्स में लगा रहे हैं। यह पूरा धंधा इतना मुनाफे वाला बन गया है कि अब छोटे-छोटे गांवों में भी पब्लिक या कान्वेंट स्कूल कुकुरमुत्तों की तरह उग रहे हैं। कच्ची झोपड़ियों, गंदगी के बीच, बगैर माकूल बैठक व्यवस्था के कुछ बेरोजगार एक बोर्ड लटका कर प्राइमरी स्कूल खोल लेते हैं। इन ग्रामीण स्कूलों के छात्र पहले तो वे लोग होते हैं जिनके पालक पैसे वाले होते हैं और अपने बच्चों को सरकारी स्कूल में भेजना हेठी समझते हैं। फिर कुछ ऐसे अभिभावक, जो खुद तो अनपढ़ होते हैं लेकिन अपने बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाने की महत्वाकांक्षा पाले होते हैं, अपना पेट काट कर ऐसे पब्लिक स्कूलों में अपने बच्चों को भेजने लगते हैं। कुल मिलाकर दोष जर्जर सरकारी शिक्षा व्यवस्था के सिर पर जाता है जो आम आदमी का विश्वास पूरी तरह खो चुकी है।

विश्व बैंक की एक रपट कहती है कि भारत में 6-10 साल के कोई 3.2 करोड़ स्कूल नहीं जा पा रहे हैं। रपट में यह भी कहा गया है कि भारत में शिक्षा को लेकर बच्चों-बच्चों में खासा भेदभाव है। लड़कों-लड़कियों, गरीब-अमीर और जातिगत आधार पर बच्चों के लिए पढ़ाई के मायने अलग-अलग हैं। रपट के अनुसार 10 वर्ष तक के सभी बच्चों को स्कूल भेजने के लिए 13 लाख स्कूली कमरे बनवाने होंगे और 7 लाख चालीस हजार नए शिक्षकों की जरूरत होगी। सरकार के पास खूब बजट है और उसे निगलने वाले कागजी शेर भी। लेकिन मूल समस्या स्कूली शिक्षा में असमानता की है। प्राथमिक स्तर की शिक्षण संस्थाओं की संख्या बढ़ना कोई बुरी बात नहीं है, लेकिन 'देश के भविष्य' की नैतिक शिक्षा का पहला आदर्श शिक्षक जब तीन हजार पर दस्तखत कर बमुश्किल पांच-छह सौ रुपए का भुगतान पा रहा हो तो उससे किस स्तर के ज्ञान की उम्मीद की जा सकती है।

जब पहली कक्षा के ऐसे बच्चे को, जिसे अक्षर ज्ञान भी बमुश्किल है, उसे कंप्यूटर की ट्रेनिंग दी जाने लगे, महज इसलिए कि पालकों से इस नाम पर अधिक फीस घसीटी जा सकती है, तो किस तरह तकनीकी शिक्षा प्रसार की बात सोची जा सकती है। स्तरीय प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य पाने का केवल एकमात्र तरीका है- स्कूली शिक्षा का राष्ट्रीयकरण। अपने दो या तीन वर्ग किमी के दायरे में आने वाले स्कूल में प्रवेश पाना सभी बच्चों का हक हो, सभी स्कूलों की सुविधाएं, पुस्तकें, फीस एक समान हो, मिड डे मील सभी को एक जैसा मिले और कक्षा आठ तक के सभी स्कूलों में शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो। यह सब करने में खर्चा भी अधिक नहीं है, बस जरूरत होगी तो इच्छाशक्ति की। ❑

जम्मू में कार्यकर्ता बैठक सम्पन्न

आल जम्मू कश्मीर व लद्दाख टीचर्स फेडरेशन ने जम्मू के त्रिकुटा भवन में 27.5.2014 को एक दिन की कार्यकर्ता बैठक का आयोजन किया। जिसमें श्री महेन्द्र कपूर (राष्ट्रीय संगठन मंत्री, अ.भा.रा.शै. महासंघ) ने पूरा दिन रह कर कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन किया। जम्मू-कश्मीर प्रांत कार्यवाह श्रीमान पुरुषोतम दधीचि (एक्स- लॉ सैक्ट्री जम्मू कश्मीर सरकार) ने भी कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन किया।

प्रात: 9 बजे से सायं 4 बजे तक चली बैठक में अजकलतफे के प्रधान श्री भूषण सिंह वर्मा ने तीन सत्रों में चली बैठक के एक सत्र में स्थानीय अध्यापकों की समस्याओं पर चर्चा की। बैठक में श्री महेन्द्र कपूर ने अजकलतफे द्वारा संगठन संरचना जम्मू कश्मीर के हर जिले तक पहुँचाने, अपनी सदस्यता बढ़ाने पर चर्चा की। उन्होंने शिक्षा का स्तर बढ़े, बच्चों को अच्छी पढ़ाई मिले, स्कूलों में ऐसे वातावरण तैयार करने और अपने प्रयास से अध्यापकों में कार्य करने की क्षमता बढे आदि प्रयास संगठन द्वारा किये जाने चाहिए।

कौशल के हथियार से भारत बनेगा सिरमौर

❑ जयंतीलाल भंडारी

दुनिया की अर्थ व्यवस्थाओं के विकास संबंधी रुझान पेश करने वाले लगभग सभी आर्थिक अध्ययनों में जो महत्वपूर्ण तथ्य उभरकर सामने आ रहा है, वह यह कि यदि कौशल प्रशिक्षण की बुनियाद के साथ भारत आर्थिक विकास की डगर पर आगे बढ़ेगा तो दो दशक बाद विश्व की प्रमुखतम आर्थिक शक्ति के रूप में दिख सकता है। अमेरिकी सरकार की राष्ट्रीय खुफिया परिषद (एनआईसी) द्वारा प्रकाशित ग्लोबल ट्रेंड 2030 की रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत 2030 तक नई प्रोफेशनल पीढ़ी के कारण विश्व की सबसे बड़ी आर्थिक ताकत बनकर उभर सकता है।

यकीनन 16वीं लोकसभा चुनाव के नतीजे के बाद नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली सरकार से करोड़ों युवाओं की सबसे महत्वपूर्ण अपेक्षा कौशल विकास से संबंधित है। इन दिनों दुनिया की अर्थ व्यवस्थाओं के विकास संबंधी रुझान पेश करने वाले लगभग सभी आर्थिक अध्ययनों में जो महत्वपूर्ण तथ्य उभरकर सामने आ रहा है, वह यह कि यदि कौशल प्रशिक्षण की बुनियाद के साथ भारत आर्थिक विकास की डगर पर आगे बढ़ेगा तो दो दशक बाद विश्व की प्रमुखतम आर्थिक शक्ति के रूप में दिख सकता है।

अमेरिकी सरकार की राष्ट्रीय खुफिया परिषद (एनआईसी) द्वारा प्रकाशित ग्लोबल ट्रेंड 2030 की रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत 2030 तक नई प्रोफेशनल पीढ़ी के कारण विश्व की सबसे बड़ी आर्थिक ताकत बनकर उभर सकता है। भारत के आर्थिक शक्ति बनने से संबंधित सभी अध्ययन व सर्वेक्षण बता रहे हैं कि प्रोफेशनल्स और कौशल प्रशिक्षण से सुसज्जित नई पीढ़ी भारत की नई ताकत होगी। अत: देश की नई सरकार को नए मानव संसाधन (ह्यूमन रिसोर्स) को और पेशेवर बनाने के लिए नए रणनीतिक प्रयास करने होंगे। श्रमशक्ति पर आधारित नई रणनीति के तहत चीन की तरह भारतीय श्रम को कौशल विकास से सुसज्जित करना होगा। कुशल श्रम परिदृश्य पर भारत के लिए ऐसी अनुकूलताएं भी आकार ग्रहण कर रही हैं। हाल में नियन्त्रण शोध अध्ययन संगठन टॉवर्स वॉटसन ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि चीन की तुलना में भारत में श्रम ज्यादा सस्ता है। इस शोध अध्ययन में भारत और चीन में इस समय मिल रही मजदूरी और वेतन की तुलना की गई है और निष्कर्ष निकाला गया है कि भारत की तुलना में चीन में श्रमिकों और कर्मचारियों को औसतन दोगुना वेतन मिलता है।

नि:संदेह अपने सस्ते एवं प्रशिक्षित श्रमबल के कारण चीन वर्षों से आर्थिक विकास के मोर्चे पर दमदार प्रदर्शन कर रहा है, लेकिन अब वहां सस्ते श्रमबल की कमी विकास के लिए चुनौती बन रहा है। चीन में सस्ते श्रम की कमी का बड़ा कारण यह है कि वहां के शहरों में ही नहीं, गांवों में भी अतिरिक्त श्रमिक नहीं बचे हैं। चीन में जहां युवा आबादी कम हो रही है, वहीं बूढ़े लोगों की संख्या लगातार बढ़ रही है। चीन की 15 से 59 वर्ष की कामकाजी आबादी में लगातार गिरावट शुरू हो गई है। इस समय चीन की कार्यशील आबादी 94.4 करोड़ है, जो तेजी से घटते हुए 2030 में 87.7 करोड़ रह जाएगी। इसमें दो मत नहीं है कि अब तक चीन अपनी भारी कामकाजी आबादी और सबसे सस्ते श्रमबल के कारण दुनिया का औद्योगिक केन्द्र बना हुआ है। लेकिन भविष्य में उसके उद्योगों में श्रमबल की कमी और श्रम लागत बढ़ने से औद्योगिक स्थिति में चिंताजनक बदलाव आएगा। अर्थ विशेषज्ञों का कहना है कि अब चीन

अपने उद्योगों में उत्पादकता बढ़ाने के चाहे जितने प्रयास करे, वह श्रमबल के घटने और श्रम लागत बढ़ने से होने वाले नुकसान से बच नहीं सकेगा। ऐसे में चीन से भी सस्ते श्रमबल के लिए उभरकर सामने आए भारत के लिए आर्थिक विकास के जोरदार मौके दिख रहे हैं। लेकिन सस्ते श्रमबल से भारत की आर्थिक तस्वीर संवारने के लिए हमें चीन के अब तक के श्रम अर्थशास्त्र से कुछ सीख लेनी होगी। चीन ने अपनी सस्ती श्रमशक्ति को शिक्षित-प्रशिक्षित करने की रणनीति अपनाई है। अब भी चीन भारत की तुलना में श्रमबल को तेजी से मानव संसाधन के रूप में परिणित करते दिख रहा है। वहां उच्च शिक्षा के ज्यादातर छात्र अंग्रेजी माध्यम में इंजीनियरिंग, मैनजमेंट और साइंस विषयों की पढ़ाई और शोध कार्य कर रहे हैं। वहीं कम शिक्षित छात्र कौशल प्रशिक्षण से सुसज्जित हो रहे हैं। इसके विपरीत भारतीय परिदृश्य देखें तो यहां तकरीबन साढ़े तीन करोड़ बच्चे स्कूली शिक्षा से वंचित हैं। स्कूलों में ही नहीं, कॉलेजों में भी रोजगार की जरूरत के अनुरूप पाठ्यक्रम नहीं हैं। इतना ही नहीं, भारत के उद्योग-व्यवसाय में कौशल प्रशिक्षित लोगों की मांग और आपूर्ति में लगातार अंतर बना हुआ है। भारत में औसतन 20 प्रतिशत युवाओं के पास कौशल प्रशिक्षण है, जबकि चीन के 80 प्रतिशत युवा कौशल प्रशिक्षण से परिपूर्ण हैं। यद्यपि भारत में औद्योगिक एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थाओं की कमी नहीं है, लेकिन गुणवत्ता व रोजगार की नई जरूरतों के हिसाब से भारतीय श्रम प्रशिक्षण संस्थान कारगर भूमिका नहीं निभा पा रहे हैं। कम शिक्षित और सामान्य योग्यता वाले युवाओं को कौशल प्रशिक्षण से सुसज्जित करना होगा। गांवों में काफी संख्या में जो गरीब, अशिक्षित और अर्द्धशिक्षित लोग हैं, उन्हें अर्थपूर्ण रोजगार देने के लिए कौशल प्रशिक्षण से सुसज्जित करके खास तकनीक विनिर्माण में लगाना होगा। हमें नई पीढ़ी को देश और दुनिया की अर्थव्यवस्था के मद्देनजर रोजगार की जरूरत के अनुरूप मानव संसाधन (ह्यूमन रिसोर्स) के रूप में गढ़ना होगा।

देश की अर्थव्यवस्था को ऊंचाई देने में भारत के मैनेजमेंट, इंजीनियरिंग, मेडिकल, लॉ, अकाउंटिंग आदि पेशेवर पढ़ाई वाले शिक्षित-प्रशिक्षित युवाओं की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। इसमें दो मत नहीं है कि भारत की नई पीढ़ी और भारत के प्रोफेशनल्स के लिए देश और दुनिया में रोजगार के चमकीले द्वार खुल रहे हैं। माना जा रहा है कि भारतीय मिट्टी में प्रतिभाओं तथा नियंत्रण जरूरत के उद्यमियों व प्रोफेशनल्स की पौध सबसे ज्यादा लहलहा रही है। यह स्पष्ट है कि दुनिया में आज भी मानव संसाधन में परिणित भारतीय प्रतिभाओं की मांग है और भविष्य में भी बनी रहेगी। विश्व बैंक सहित दुनिया के कई आर्थिक संगठनों के अध्ययनों के मुताबिक विकसित देशों और कई विकासशील देशों में 2020 तक कामकाजी जनसंख्या की भारी कमी होगी। ऐसे में दुनिया के जनसंख्या मानचित्र को देखते हुए अर्थ विशेषज्ञ यही कह रहे हैं कि भारतीय जनसंख्या में युवाओं की करीब आधी आबादी और दुनिया की जनसंख्या में युवाओं की करीब चौथाई आबादी का स्वरूप भारत के लिए संभावनाओं के द्वार खोल सकता है और बढ़ी आबादी मानव संसाधन के रूप में अर्थतंत्र के लिए वरदान सिद्ध हो सकती है।

निश्चित रूप से भारतीय अर्थव्यवस्था को चमकाने में कौशल प्रशिक्षित और मानव संसाधन के रूप में उपयोगी बनी नई पीढ़ी के साथ-साथ भारतीय मध्यम वर्ग की विशेष भूमिका होगी। कल का उपेक्षित और गुमनाम भारतीय मध्यम वर्ग अपनी बढ़ती क्रय शक्ति के कारण आज देश-दुनिया की आंखों का तारा बन गया है। भारत का मध्यम वर्ग जहां देश को आर्थिक महाशक्ति बनाने का सपना लेकर आगे बढ़ रहा है, वहीं वह अपनी खरीद क्षमता के कारण पूरी दुनिया को भारत की ओर आकर्षित कर रहा है। देश की विकास दर के साथ-साथ शहरीकरण की ऊंची वृद्धि दर के बलबूते भारत में मध्यम वर्ग के लोगों की आर्थिक ताकत तेजी से बढ़ी है। 1991 से शुरू हुए आर्थिक सुधारों के बाद देश में मध्यम वर्ग के लोगों की संख्या और खरीद क्षमता चमकीली ऊंचाई पर पहुंच गई है और चारों ओर भारतीय मध्यम वर्ग का स्वागत हो रहा है। नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर अप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च की रिपोर्ट में कहा गया है कि वर्ष 2015- 16 में भारतीय उच्च मध्यम वर्ग की संख्या 27 करोड़ हो जाएगी। इस विशालकाय मध्यम वर्ग की आंखों में उपभोग और खुशहाली के सपनों को पूरा करने के लिए देश-विदेश की बड़ी-बड़ी कंपनियां नई-नई रणनीतियां बना रही हैं। आशा करें कि देश में नई केन्द्र सरकार द्वारा नियन्त्रण अध्ययन संगठन टॉवर्स वाटसन की ताजा रिपोर्ट के मद्देनजर भारतीय श्रमबल के आर्थिक उपयोग की नई रणनीति से देश की अर्थव्यवस्था को ऊंचाई देने की दिशा में कदम उठाए जाएंगे। ❑

कोटा में शीतल जल प्याऊ प्रारम्भ

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) कोटा महानगर इकाई द्वारा सामाजिक सरोकार के कार्य करने के अन्तर्गत भीषण गर्मी को देखते हुये राहगीरों की सुविधा हेतु टीचर्स कोलोनी महावीर नगर विस्तार योजना कोटा की मुख्य सड़क पर दीप शोरूम के सामने स्थित बरगद के पेड़ के नीचे प्रथम शीतल जल प्याऊ का एवं कोटा झालावाड़ राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित नगर निगम क्षेत्र के जगपुरा में वार्ड नम्बर 29 में स्थित बलदाऊ जी के मंदिर के पास दूसरी शीतल जल प्याऊ का शुभारम्भ 2 मई 2014 को समारोह पूर्वक किया।

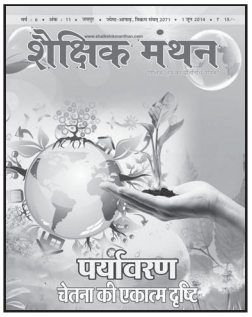

'Singapore, Korea new education powerhouses'

❑ **Ayesha Banerjee**

Asia has a few key education powerhouses that India should learn its lessons from as more and more Asian students seek to identify countries in the region as education destinations. Ben Sowter, head of research at Quacquarelli Symonds (QS) talks about the 2014 'QS Asia Pacific University Rankings,' unveiled recently

How do these rankings compare with the global rankings - and what are the most important findings of the survey this year?

The QS University Rankings: Asia was the first regional league produced by QS, back in 2009, in response to a demand from the region itself. We first designed the World University Rankings in 2003 and published them in 2004 because we realised that there was a growing community of international students who wanted to understand which universities were truly world-class. Institutions were also keen to understand how they compared with their peers in a global context.

Over the past decade, the students' mobility within the Asian region has increased exponentially year on year. A two-third of the international students are Asian and of them a significant proportion is now choosing to study outside their home country but to remain in Asia rather than go West. Such a trend prompted us to engage with academics in Asia to define the criteria for a ranking dedicated to highlight excellence in the region.

Over the past decade, the students' mobility within the Asian region has increased exponentially year on year. A two-third of the international students are Asian and of them a significant proportion is now choosing to study outside their home country but to remain in Asia rather than go West. Such a trend prompted us to engage with academics in Asia to define the criteria for a ranking dedicated to highlight excellence in the region.

Top Universities in Asian Countries

Country/ Territory	Top 50	Top 51-100	Top 101-200	Top 201-300	Top universities by country
Bangladesh	-	-	1	-	1
Brunei	-	-	1	-	1
China-Mainland	9	13	25	26	73
Hong Kong	6		1		7
India	2	6	5	4	17
Indonesia	-	1	3	5	9
Japan	13	8	30	17	68
Korea (South)	9	10	12	15	46
Macau	-	-	-	1	1
Malaysia	1	4	2	11	18
Pakistan	-	-	5	5	10
Philippines	-	1	3	1	5
Singapore	2	-	-	-	2
Sri Lanka	-	-	-	1	1
Taiwan	6	6	5	11	28
Thailand	2	1	5	2	10
Vietnam	-	-	2	1	3
					300

The methodology is still based on the four pillars that underpin our World University Rankings: teaching commitment, research impact, employability of graduates and international outlook.

The weightings have been adjusted to better reflect and capture the priorities of universities in the Asian context and their reality.

For instance, in the Asian rankings, we have included 'Papers per Faculty' as one of the research indicators – as measuring the research productivity in a region where there are many young universities is relevant - as is measuring the student exchanges. The comparison is in the boxes below.

Which country would you say is 'emerging' in terms of education excellence?

These rankings have highlighted the emergence of Singapore and Korea as the new education powerhouses, that are challenging more established countries such as Japan and territories like Hong Kong. If we consider the overall population and the economic size of certain countries, it is apparent that South Korea, with 46 universities ranked. is doing extremely well – as is Taiwan with 28.

Singapore's leading university, NUS – tops the table, while the other top local institution, NTU, ranks 7. China has 73 institutions ranked and Japan 68. Impressive numbers, but it is obvious that their dominance is challenged by other very competitive players.

The table above shows how many universities each country has in the ranges considered

Which countries are included in the rankings and why?

For the sixth edition of the QS University Rankings: Asia, 491 institutions have been evaluated 474 ranked and 300 published. We have included all the countries in Asia (excluding Central Asia and Asia Minor)

What are the challenges that Asian universities face in comparison to the top-ranked global institutions?

There are no quick fixes to rise to the top. Systematic and sustained performance improvement requires institutional autonomy, consistent institutional leadership without political intervention, a permanent culture of laying structural and financial foundations for future growth and a single-minded focus on identifying and nurturing the most carefully selected international partnerships. Fierce branding guidelines wouldn't hurt either.

As English-speaking and major international transit hubs, Singapore and Hong Kong enjoy some natural competitive advantages and have long dominated the top few places in this table. However, NUS taking the top spot this year has also been the product of its undeniable evolution to world-class with cutting- edge education and research. ❑

COMPARISON OF STUDENT EXCHANGES

QS University Rankings: ASIA

Criteria	Weight
Academic reputation	30%
Employer reputation	10%
Student/faculty Ratio	20%
Papers per faculty	15%
Citations per paper	15%
Internationalisation	5%
Student exchange inbound	2.50%
Student exchange outbound	2.50%
	100%

QS World University Rankings

Criteria	Weight
Academic reputation	40%
Employer reputation	10%
Student/faculty Ratio	20%
Papers per faculty	n/a
Citations per paper	20%
Internationalisation	10%
Student exchange inbound	n/a
Student exchange outbound	n/a
	100%

दिल्ली में कार्यकर्ता अभ्यास वर्ग सम्पन्न

दिल्ली अध्यापक परिषद का दो दिवसीय कार्यकर्ता अभ्यास वर्ग आर.ए. गीता वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय (सहशिक्षा) राजगढ़, दिल्ली-51 के डा. हेडगेवार सभागार में 12 मई सायं से प्रारम्भ हुआ। रात्रि के सत्र में समस्त प्रतिभागी कार्यकर्ताओं ने अपना परिचय दिया।

13 मई को प्रात: उद्घाटन सत्र में राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर (अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ) के द्वारा दीप प्रज्ज्वलन कर किया गया। प्रारम्भ में अध्यक्ष श्री जयभगवान गोयल ने कार्यकर्ता अभ्यास वर्ग का महत्व बताते हुये कार्यकर्ता निर्माण हेतु इसे साधना वर्ग कहा। इसी सत्र में महामंत्री श्री रतन लाल शर्मा ने दिल्ली अध्यापक परिषद, दिल्ली एवं श्री महेन्द्र कपूर ने अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ का क्रमश: संगठनात्मक परिचय विस्तार से दिया।

तृतीय सत्र में कार्यकर्ता और व्यवहार पर प्रो. सीताराम जी व्यास (क्षेत्र कार्यवाह-रा.स्व.संघ) ने कार्यकर्ताओं को सम्बोधन में मुख्य रूप से संगठन को कार्यकर्ता के व्यक्तिगत गुणों में जोर दिया। उन्होंने कहा कि समाज के साथ कार्य करते एवं संवाद करते हुये कार्यकर्ता की सोच बदल जाती है। कार्यकर्ता में वैचारिक दृढ़ता एवं विश्वास होना चाहिए। इसी आधार पर रामचरित्र मानस को लिखा गया। कार्यकर्ता को समझना, सुनना और समन्वय करना चाहिए तभी संगठन का विकास हो सकता है।

चतुर्थ सत्र में संगठन द्वारा समाप्त वर्ष में शिक्षक समस्या और समाधान के प्रयासों का श्री राजेन्द्र गोयल (प्रदेश संगठन मंत्री) द्वारा आर.टी.ई. पर पुन: विचार, एम.ए.सी.पी., मिड-डे मील से अध्यापकों को दूर करना, सी.सी.एल, कैश लैस चिकित्सा सुविधा, छात्रों की सुरक्षा एवं छात्रों को नैतिक शिक्षा इसी सत्र से दिये जाने आदि विषय में चर्चा हुई। इस सत्र का संचालन श्री राजेन्द्र सिंह (अध्यक्ष, नई दिल्ली नगर पालिका निकाय) ने किया।

पंचम सत्र में समस्याऐं एवं उनके निदान हेतु सुझाव श्री जगदीश चन्द्र कौशिक (वरिष्ठ उपाध्यक्ष) ने इस सत्र में वेतन विसंगति, सिटीजन चार्टर, विद्यालयों में सफाई एवं पेयजल) बाह्य बच्चों को विद्यालय में क्रीड़ा स्थल देना, स्थायी नियुक्ति, दो वर्ष पुन: नियुक्ति, विशेष अध्यापक (खेल आदि) की नियुक्ति, छात्रों को मिलने वाली सभी सुविधा समय पर मिलना आदि रहे। निदान हेतु अनेक सुझाव भी प्रतिभागियों ने दिये।

षष्ठम सत्र में श्री महेन्द्र कपूर ने संगठनात्मक कार्य वृद्धि विषय पर कार्यकर्ताओं के अनेक प्रश्नों के उत्तर दिये। एक कार्यकर्ता द्वारा सदस्यता पर प्रश्न करने पर उन्होंने विषय को विस्तार से लिया।

उन्होंने सदस्यता को संगठन का महत्वपूर्ण अंग बताते हुये कार्यकर्ताओं को समझाया कि संगठन को सदस्यता हेतु माहौल बनाने के लिए पहले निकायश:, जिलाश:, क्षेत्रश: बैठकों का कार्य चलाना चाहिए। तत्पश्चात चूंकि जिलाध्यक्ष, मंत्री अकेले प्रत्येक विद्यालय में नही जा सकते अत: इन विद्यालयों को समूहों में बांटे। यह समूह अधिक विद्यालयों का न हो। ताकि एक ही साथ कार्यक्रम योजना प्रान्त से 5 या 7 विद्यालयों के समूहों तक पहुचे। सदस्यता करने से समस्याएं ज्ञात होती है। समस्या से कार्यक्रम बनते हैं। इसी से कार्यकर्ता मिलता है। जब तक संगठन नये कार्यकर्ता की खोज नहीं करेगा, कार्यवृद्धि हो ही नही सकती। सदस्यता समय बद्ध हो, प्रत्येक विद्यालय तक करें। सत्र संचालन राजकीय निकाय के प्रदेश मंत्री श्री के. आर. के. सिंह ने किया।

सप्तम सत्र में श्री जगदीश सिंह चौहान राष्ट्रीय सचिव (प्रा. संवर्ग) ने वार्षिक कार्ययोजना विषय लिया। सत्र संचालन श्री सुरेन्द्र पाल शर्मा (अध्यक्ष अनुदान प्राप्त विद्यालय निकाय) ने दिया।

अष्ठम सत्र में जिज्ञासा व समाधान अध्यक्ष श्री जयभगवान गोयल ने लिया। जिसमें दिल्ली के अन्य शिक्षक संगठनों के साथ समन्वय, सरकारी स्कूलों की तरह अनुदान प्राप्त विद्यालयों को सुविधाएं, शिक्षकों की ठेकेदारी प्रथा समाप्त हो, संगठन के आय-व्यय का लेखा-जोखा समय पर हो, दिल्ली के चारों निकायों का समन्वय, दिल्ली अध्यापक परिषद के संविधान की सभी कार्यकर्ताओं को जानकारी आदि प्रश्न उठाये गये। जिनका समाधान अध्यक्ष महोदय द्वारा किया गया। सत्र संचालन श्री रतन लाल शर्मा ने किया।

नवम सत्र में माननीय डा. विमल प्रसाद अग्रवाल (अध्यक्ष- अ.भा.रा.शै महासंघ) ने भारतीय शिक्षा विषय को कार्यकर्ता के सम्मुख रखते हुए कहा कि शिक्षा का संबंध साक्षरता से नहीं है वर्तमान में जिन्हें प्रोफेसर, लेक्चरार आदि नामों से संबोधित किया जाता है उन्हें गुरु और आचार्य कहा जाता था। अर्थात् वे अपने आचरण से शिक्षा पर प्रभाव डाल भारतीय संस्कृति के उत्थान के द्योतक थे। वे प्रकृति से परिचय तथा आश्रम में शिक्षा ग्रहण करने वाले सभी विद्यार्थियों को भेद-भाव से अलग रखते थे। राम और लक्ष्मण का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि राजकुमार होते हुए भी सीता के लिये वनवास के समय झोंपड़ी का निर्माण किया। उन्होंने धौम्य ऋषि जिनका निवास कश्मीर में था गुरु दक्षिणा में उपमन्यु से केवल एक समय का भोजन मांगा। जब वह अत्यधिक भोजन सामग्री लेकर गुरुकुल पहुंचा तो गुरु ने कहा कि यह मेरे स्वावलम्बी होने पर प्रश्न चिन्ह लगाता है अत: हमें यह आश्रम छोड़ देना चाहिये। यह गुरु शिष्य परम्परा ही थी कि जो सदैव एक दूसरे का ध्यान रखते थे। भारत की पहचान भारतीय शिक्षा से ही हो और भारत का उत्थान भारतीय शिक्षा के द्वारा ही हो सकता है। इस सत्र का संचालन श्री राजेन्द्र स्वामी (वरिष्ठ उपाध्यक्ष) ने किया।

समापन सत्र में राष्ट्रीय अध्यक्ष डा. विमल प्रसाद अग्रवाल ने अनेक उदाहरण देकर राष्ट्र हित में शिक्षा, शिक्षा हित में शिक्षक और शिक्षक हित में समाज की संरचना को अभ्यासवर्ग में कार्यकर्ताओं के सम्मुख रखते हुए कार्यकत्ताओं के निर्माण, आचरण आदि पर बल दिया। श्री रोशन लाल (सह प्रान्त कार्यवाह) पूरे समय उपस्थित रहे। आभार श्री राजेन्द्र गोयल ने तथा मंच संचालन श्री रतन लाल शर्मा ने किया।